॥ श्री ॥ १ ॥

श्री श्री रामकृष्ण परमहंसदेव

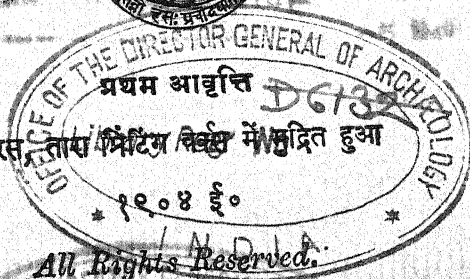
का

संक्षिप्त जीवन चरित्र और उपदेश

जिनको

वंगभाषा की पुस्तकों से ब्रह्मवादिन क्लव, इल्हावाद, की सहानुभूति से स्वामी विज्ञानानन्द जी ने संग्रह और अनुवाद कराया





प्रथम आवृत्ति

बनारस, तारा प्रिंटिंग वर्क्स में मुद्रित हुआ

१९०४ ई०

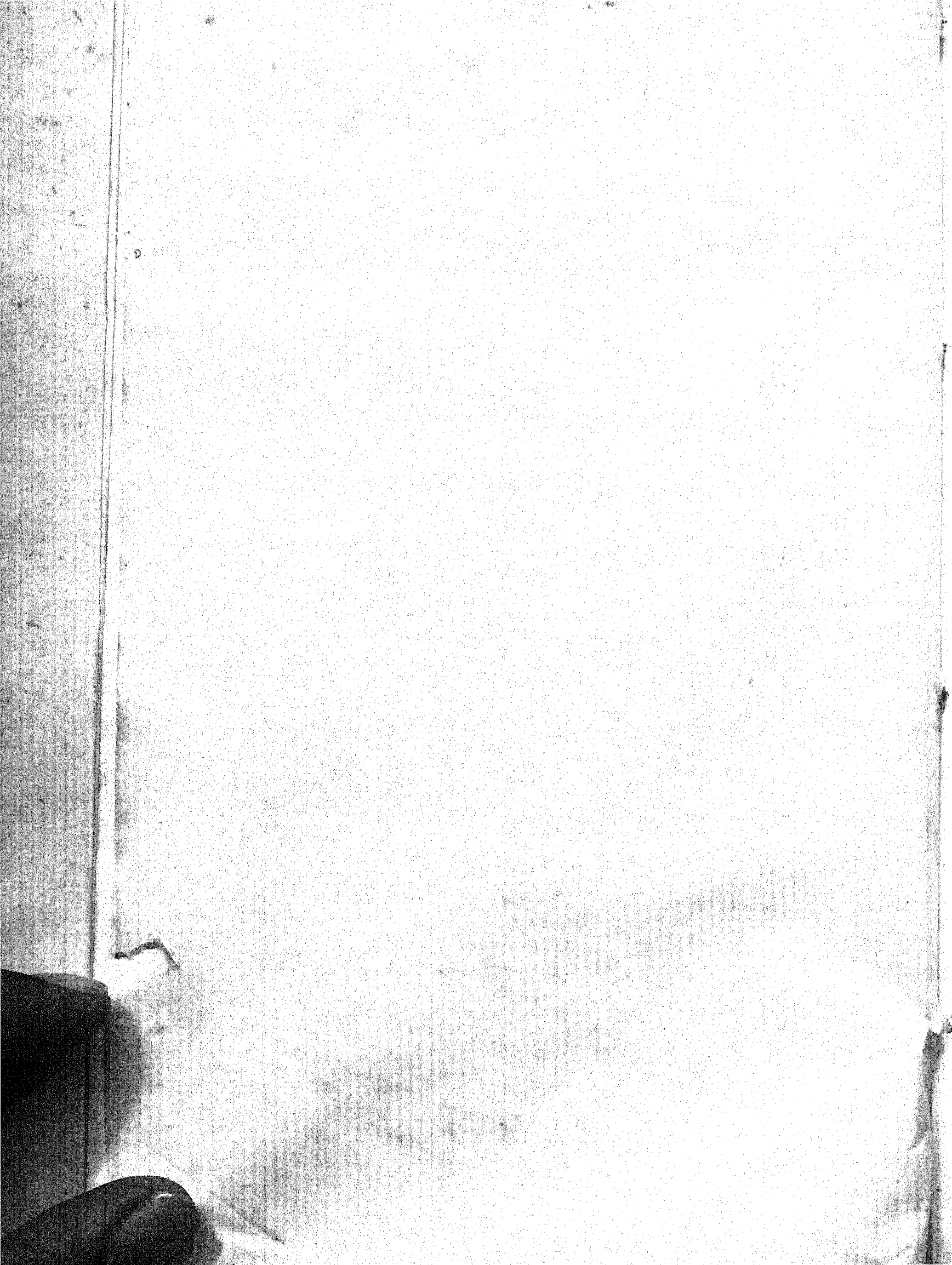
TO BE HAD FROM

PANINI OFFICE,—Bahadurgunj Allahabad.

BRAHMAVADIN CLUB,—Station Road, Allahabad.

BELUR MATH,—District Howrah.

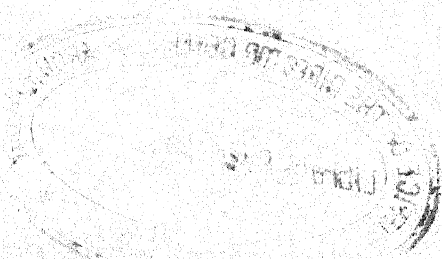
THEOSOPHICAL PUBLISHING SOCIETY, BENARES CITY.

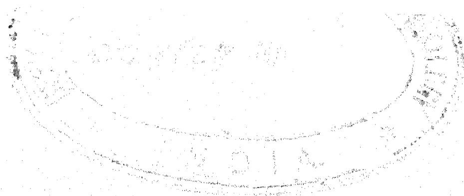

D



भगवान रामकृष्ण ।

Indian Press.] [Allahabad.





विवेकानन्द स्वामी ।

Indian Press.] [Allahabad.

अनुक्रमाणिका ।

	पृष्ठा
भूमिका	१, १६
पवित्र जन्म भूमि	१
रामकृष्ण जी के माता और पिता	२
श्री रामकृष्ण का जन्म	४
" बाल्यावस्था	५
" नवीन तरुणावस्था	९
पिछली युवावस्था	१९
जगत में उजागर होना	२३
बालवत् चरित्र	३५
स्त्री भाव	३२
पुरुष भाव	३८
पागल कीसी स्थिति	४०
पिशाच वत् "	४५
रामकृष्ण और कनक	४६
" " कामिनी	५०
दीन रामकृष्ण	५३
दयालु "	५६
प्रेममय रामकृष्ण	६५
अलौकिक "	७१
परमहंस जी अवतारी पुरुष थे	८०

——:o:——

उपदेश

ईश्वर का अस्तित्व	१
" " एकत्व	"
" " प्रकाश वहुविध है	२
सब मत ईश्वर की प्राप्ति की पन्थ है	२
साकार और निराकार ईश्वर	३
ब्रह्म निर्णय	४

	पृष्ठा
व्यक्त और अव्यक्त ईश्वर	५
माया और ब्रह्म	६
ब्रह्म वाणी से प्रकाश नहीं किया जा सकता	८
सगुण और निर्गुण ब्रह्म	६
जीव और ईश्वर	१०
जीवात्मा और परमात्मा का सम्बन्ध	२०
मनुष्य और ईश्वर का सम्बन्ध	११
ईश्वर की प्राप्ति की विकलता	१२
ईश्वरानुसन्धान	१३
क्यों कर ईश्वर दृष्ट होवे	१५
ईश्वर के नाम	२७
किसने ईश्वर को देखा	२८
ईश्वर आपही प्रकाश होता है	१९
ईश्वर भक्ति से प्रदत्त छोटे से छोटे दान को भी ग्रहण करता है	२०
मनुष्य के हृदयमें ईश्वर का आगमन	२१
ईश्वर दर्शन ।	२१
जिसने ईश्वर को देखा, वह अनर्थ नहीं मचाता	२२
ईश्वर द्रष्टा को कोई पार्थिव विषया-	

	पृष्ठा
सक्त नहीं कर सकता है	२३
ईश्वर विषयक ज्ञान और ईश्वर की भक्ति	२४
मूर्त्ति पूजन	२५
सब में ईश्वर है	२५
मनुष्य की मुक्ति	५७
मनुष्य के अभ्यन्तर ईश्वर	२७
मुक्ति दाता ईश्वर के प्रेरित होते हैं	२८
मुक्ति दाताओं की मुक्ति देने की शक्ति	२९
मुक्ति दाता बहुतेरे हैं	२९
अवतार और सिद्ध पुरुष	३०
सिद्ध पुरुष कितने प्रकार के होते हैं	३२
महात्मा	३३
पूरे मनुष्य पार्थिव विषयों से निर्लिप्त हेति हैं	३४
महात्माओं में अहंकार की छायामात्र रहती है	३५
पहुंचे हुए मनुष्य के द्वारा प्रचार	३६
जो पहुंच नहीं हैं, उनसे प्रचार	३७
सब शिक्षाओं का मूल कारण ईश्वर है	३८
नवियों की प्रतिष्ठा उनकी जन्म-भूमि में नहीं होती है	३९
पवित्र साधुओं में ईश्वर की ज्योति का प्रकाश रहता है	३९
सत्सङ्ग	४०
गुरु	४१
एक ही गुरु पर्याप्त है	४२
शिष्य, गुरु का दोष न देखे	४२
गुरु अध्यात्म उन्नति में सहायता करता है	४३
सन्यासी	४४
आध्यात्मिक जीवन शक्ति	४५
ज्ञान, भक्ति, और प्रेम	४७
प्रत्येक जन अपने अपने धर्म मत का अनुसरण करे	५३
अन्य २ धर्म मत पर विद्वेष भाव न रखना	५४
वितण्डा मत ठानो	५५
शास्त्रोक्त क्रिया तथा वर्णाश्रम धर्म	५६
संप्रदाय	५७
धर्म की बात बोलना सहज है पर उसका आचरण कठिन है	५८

	पृष्ठा
दो प्रकार की प्रवृत्तियों को लिये हुए मनुष्य जन्म लेता है	५९
बालकों के हृदय को ईश्वर की ओर झुकाओ	६०
जो जगत् के कामों में फँसे हुए हैं, उनको भजन करने का अवसर काहे को मिल सकता है	६२
संसार लिप्त पुरुष धर्म के विषय में भी कपटी होते हैं	६३
दुष्कर्म कारी का हृदय	६४
कनक कामिनी में लिप्त मन	६५
घोर संसारियों का हृदय ईश्वर की कृपा से अवसर पाके भी नहीं पलटता है	६६
संसारियों से धर्म प्रचार	६८
संसारी मनुष्य का मन	६८
संसारी मनुष्य इन्द्रिय सुखों को विशेष चाहते हैं	६९
ईश्वर और संसार का किस भांति से मेल मिलावें	७२
इन्द्रियों को कैसे जीतें	७४
ब्रह्मज्ञान की मुक्ति दायिका शक्ति	७६
पहिले ईश्वर की प्राप्ति करो। पश्चात संसारका सेवन करो	७७
साधक को संसारी मनुष्यों से मिलना न चाहिये	७९
दुर्जन के संसर्ग से बचो	८०
साधक को निर्जन स्थान सेवन करना चाहिये	८२
जिसका मन शुद्ध होता है। वह ईश्वर को प्राप्त करता है	८२
प्रकृत धार्मिक	८२
तपस्वी	८४
सच्चे और झूठे साधू	८४
जीवों के दशा भेद	८६
अध्यात्म लाभ हृदय की शुद्धता से होता है	८८
मन और बुद्धि की शक्ति	८९
विवेक और वैराग्य	९२
धर्म पुस्तक का पढ़ना	९३
कौन जन आत्मज्ञान नहीं कर सकते हैं	९३
माया की मोहिनी शक्ति	९५
शरीर अनित्य है	९७
खान पान	९९
धन सम्पत्ति	१००

	पृष्ठा
निन्दा और स्तुति	१०१
क्षमा और साहिष्णुता	१०१
अहंकार	१०१
मोहान्ध का यहीं सिद्धान्त है, कि हमहीं काम करते हैं	१०२
अहम ईश्वर का दास है	१०२
क्या अहंकार सम्पूर्ण नाश हो सकता है	१०३
सब ईश्वर ही का है	१०४
जाति भेद	१०४
भेद में भी एकता	१०६
मनुष्य की दुर्बलता कैसे दूर हो	१०७
भक्तों में परस्पर मित्रता	१०८
भक्तजनों का प्रेम कभी घटता नहीं है	१०९
हरि नाम और हरि भक्ति	११०
पूजा और प्रायश्चित्त	११०
श्रद्धा और भक्ति	१११

	पृष्ठा
नम्रता	११२
अभिमान	११३
ईश्वर की कृपा	११४
अध्यवसाय	११५
वालकवत हो जाओ	११५
सत्यपरायणता	११८
ईश्वर की शरणागति	११६
साधक का वल	११८
अविच्छिन्न तैल धारावत भक्ति	११८
मनका एकी करण	११९
ध्यान	१२१
समाधि	१२२
साधकको कोई बस्त्र विशेष धारण करने की क्या आवश्यकता है	१२३
सिद्ध पुरुष	१२४
दृष्टान्त समुच्चय	१२३



॥ श्रीः ॥

भूमिका ।

तव कथामृतं तप्तजीवनं
कविभिरीडितं कल्मषापहं ।
श्रवणमंगलं श्रीमदाततं
भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ॥

सामाजिक बल उस श्रद्धा और विश्वास पर निर्भर है जो प्रायः किसी समाज के विचारों में पाया जाता हो । उस समाज का प्रत्येक मनुष्य उसी विश्वास के सहारे अपना जीवन व्यतीत कर अन्तमें उसी विचार में अपना प्राण त्याग करता है । इसी प्रकार मनुष्य तौ मरते चले जाते हैं परन्तु उनके विचारांश शेष रह जाते हैं और इसी लिये वह समाज बना रहता है । हिन्दू समाज का बल भी इसी प्रकार उनके मत सम्बन्धी श्रद्धा, भक्ति और विश्वास पर निर्भर है । हिन्दू अपना नाम, प्रतिष्ठा, कीर्ति, बल, विभूति अर्थात् संसार के सब सुख अपने धर्म के सामने त्याग देता है और अनित्य पदार्थ को छोड़ नित्य पदार्थ की ओर अधिक

ध्यान देता है। हिन्दका पहला प्रश्न प्रायः यह होता है कि भौतिक पदार्थ श्रेष्ठ है वा आत्मिक। और उसका निस्सन्देह यही उत्तर होता है कि आत्मा ही श्रेष्ठ है, हिन्दओं का विश्वास भौतिक द्रव्य पर उतना नहीं वरन आत्मीय पदार्थ पर ही होता है और वह आत्मा को ही प्राण और सांसारिक तेज समझता है और अपने निश्चय को इस प्रकार दिखाता है—

मरणं विन्दुपातेन, जीवनं विन्दुधारणात्।
तस्मादतिप्रयत्नेन, कुरुते विन्दुधारणम्॥

शिवसंहिता॥

अर्थात विन्दुका पातही मृत्यु और विन्दुका धारण ही जीवन है इसी लिये विन्दुका धारण बड़े यत्नसे करना चाहिये।

हिन्दू भूतात्मवाद को (Materiality) ही मृत्युवत बिचारता है और यह उसका केवल विचार ही नहीं वरन वह इस चिन्ता में अपना जीवन व्यतीत करता है। भारतवर्ष को छोड़ संसार के और किसी देशमें इस विचार का साधन नहीं है और न पूर्ण रूप से उसका पालन ही होता है। हिन्दुस्तान में यही विचार संसार का निरन्तर मूल गिना जाता है और

यहां की प्रजा का यही जीवन मूल है और कोई प्रतिकूल प्रवाह इसकी नित्यगति के रोकने को आज तक समर्थ नहीं हुआ। वह प्रतिकूल बिचार करने वाले राक्षश राज लंकेश रावण के समान है जो एक दिन सन्ध्या समय अपने पुत्र इन्द्रजीत से यह सुन कर कि श्रीरामचन्द्रजी महाराज की सेनाही नहीं किन्तु रामचन्द्रजी और लक्ष्मण जी भी नागफांस में बँध गये अपनी विजय का बिचार कर रहा था कि सवेरा होते ही उसके कानमें "जयराम" "जयराम" की भनक पड़ी जिसके सुनते ही वह बोल उठा कि निस्सन्देह रामचन्द्रजी की बानर सेना अमर है और राचन्द्रजी मनुष्य नहीं वरन निश्चय ही विष्णुका अवतार हैं। कभी कभी भारतवर्ष की पवित्र भूमि पर भी अनात्मवाद अर्थात् भूतात्मवाद का आवरण (परदा) ऐसा गिरता हुआ जान पड़ता है कि जो मानो आत्मवाद को छिपाही देगा परन्तु देखिये थोड़े ही दिन पीछे देश के ही किसी कोने से कोई महात्मा बड़ी मधुरध्वनि से अपना गीत आरम्भ कर देते हैं कि तत्काल अन्धकार दूर हो कर प्रकाश हो जाता है।

यदा यदा हि धर्मस्यग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

चैतन्य किया जो सब मतान्तरों की नित्यमूल है। उसने किसी मत पर दोषारोपण नहीं किया। जितना वह मत मतान्तरों का आदर सत्कार करता था उतना आज-तक किसी ने नहीं किया—उसके प्रत्येक शब्दसे दिव्य सरलता—मधुरता—सत्यता और निडरता प्रकाश होती है वही सबका संतोष और शांति दाता है। इस जीवनचरित्र में यदि कोई ऐसी बात लिख गई हो जो मधुर न हो वा सत्य न हो अथवा दिव्य न हो तौ उनके जीवनका दोष नहीं है-परन्तु यह उसके लेखकका दोष है जिसके साथ अनेक सांसारिक उपाधि लगी हुई है। उनका मत सम्बन्धी अभ्यास, आचार, और तपस्या आश्चर्यमय और अनुपम हैं—उन्होने कलकत्तेके पास दक्षिणेश्वर में, जहां भूतात्मवादका विशेष चर्चा है, पंचवटीके पास एक पीपल के बृक्षके नीचे बारहवर्ष तक कठिन तपस्या की जिसको युवा और बृद्ध, स्त्री और पुरुष, संत और संसारी, सबने देखा—जब वह युवा था तौ सवेरे ही सूरज की ओर टिकटिकी लगाये हुए यह कहता सुना गया कि "हे माता" "हे माता" और इसी प्रकार उसने निरन्तर खुले नेत्र सूरज की ओर लगाये हुए उसका शिर आकाश में सूरज की गति के संग घूमता

हुआ देखा गया यहां तक कि सांझ को जब सूरज छिप जाता था तौ यह यह कहते सुनाई पड़ते थे कि " हे माता " " हे माता " सूर्य उदय हो कर अस्त हो गये परन्तु मैं आपके दर्शन न कर सका" । यह कहते ही कहते उनको मूर्छा आगई और उनकी आंखों से आंसू चलने लगे ऐसी दशा में फिर किसको संदेह रह सकता है कि ऐसे बालक का आत्मा अलौकिक नहीं है—इसी प्रकार तीनि दिन तक जब ऐसेही करते रहे तब उनको दिव्य माता का सूर्य में दर्शन हुआ—इसके उपरान्त वह थोड़ी देर तक चुप और अचेतन से हो गये और तब सद्योत्पन्न बालक के समान कहने लगे कि हे माता ! तेरे ऐसे अपूर्व और मनोहर रूप का दर्शन पाकर किसकी आत्मा को हर्ष और गौरव प्राप्त न होगा । इसके अनन्तर कुछ दिन के लिये उनके नेत्रों के पलक निमेषोन्मेष रहित अचल हो गये उनके नेत्रों को खुले देख बालकों अपनी उंगली उनकी आंखों की ओर इसलिये करते थे कि पलक चलने लगें परन्तु तब भी जब वह कृतकार्य नहीं हुए तौ इस में किस को आश्चर्य न होगा । जब वह १२ वर्ष पर्यन्त निरन्तर दिन राति जागते हुए देखे गये, तो हर मनुष्य

इस बात को असम्भव कहैगा, परन्तु नहीं श्रीमान् रामकृष्ण ने निश्चय ऐसा ही किया था।

वह धातु, मुद्रा या स्त्री को नहीं छूते थे। अभ्यागत को देखते ही पहले अपना शिर झुका देते थे उन्होंने शरीर छोड़ते समय एक भी संसारी चीज ऐसी नहीं छोड़ी जिस पर उनका अधिकार कहा जाय अपने जीवन में वह बड़े आदमी भी नहीं गिने जाते थे सिवाय इसके कि उन्होंने काम, लोभ और अहंकार पर पृर्ण विजय पाई थी और अत्यन्त नम्र थे, कभी कभी मूर्च्छित हो जाते, कभी मृतप्राय हो जाते थे और कभी जीवित हो जाते थे। और जब कभी "श्री हरि" और "आनन्दमयी माता" का नाम लिया जाता था तो तत्काल उनकी आंखों से भक्ति के आंसूओं की धारा बह चलती थी।

उपरोक्त बातों का कारण यह था कि वह अपनी शक्ति को दिखाना नहीं चाहते थे उनका कथन यह था कि शक्तियों का खोज ही परमेश्वर के मार्ग में रोक है। एक दिन धूप में चलते चलते जब उन्हों ने देखा कि उनके शरीर का प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता है उन्होंने बहुत ही डर माना और माताजी से बड़े विनय

से प्रार्थना की कि हे माता! मेरे शरीर की छाया पड़ा करे—यद्यपि वह अपनी शक्ती नहीं दिखाना चाहते थे परन्तु उनके साथी और स्नेही इस बात के जानने का बड़ा ही यत्न करते थे कि श्री रामकृष्ण को काम और लोभ से बैराग हुआ या नहीं वह कलकत्ते में वेश्या और गणिकाओं के घर अपने संग उनको ले जाते थे जहां वीसिओं तरुण स्त्री सुन्दर पट धारण किये हुए योगी को भ्रष्ट करने के लिये इकट्ठी हो जाती थीँ। श्री रामकृष्ण जब उनमें घिर जाते थे तो केवल माता का नाम पुकारते थे और उस समय उनके शरीर से जो दिव्य तेज प्रगट होता था तो वह आप मूर्च्छित हो जाते थे और उसी तेज के प्रताप से वह स्त्रियां इतनी दूर हो जाती थीं कि उनके निकट नहीं आ सकती थीं जब स्त्रियों ने यह चरित्र देखा तो वह कहने लगीं कि हमने पहले ऐसा मनुष्य नहीं देखा और जो लोग उनको वहां लेजाते थे उन्हें भी भला बुरा कहती थीं।

श्रीमान् बाबू केशव चन्द्र सेन और दूसरे महाशय इस बात को पुष्ट करते हैं कि श्री रामकृष्ण रुपये पैसे को नहीं लेते थे और न छूते थे एक समय यह चरित्र देखा गया कि उनका मुख काला है और कपड़ा

पंछ की भांति अमेठा हुआ उनकी कमरि से बंधा हुआ है और वह एक पीपल के वृक्ष की शाखा से लटके हुए हैं और जब उनसे इसका कारण पूछा गया तो उन्होंने उत्तर दिया कि वह रामचन्द्र जी के प्रसिद्धि भक्त हनुमान हो गये हैं। इस बात को सुन सब लोगों ने आश्चर्य माना। और जब वह उस वृक्ष से उतरे तो लोगों ने देखा कि उनकी गुदा के पास एक इञ्च हड्डी पूंछ के स्थान पर निकल आई है तो उनके वज्र-घात सा लगा।

जब वह अपनी माता के विषय में वार्तालाप करते थे तो ऐसा कौन होगा जो बाबू केशवचन्द्रसेन, विजयकृष्ण गोस्वामी, प्रतापचन्द्र मजुमदार, शश-धर तर्क चूड़ामणि, बङ्किम चन्द्र, कृष्णदास पाल आदि-क विद्वानों की मंडली को उनके आगे बैठे हुए और एकाग्र चित्त होकर सुनते हुए देख आश्चर्य को प्राप्त न हो—बाबू केशवचन्द्र कभी उनसे वादानुवाद या तर्क वितर्क नहीं करते थे और हमेशा घाटू नवा कर और हाथ जोड़ कर उनके सामने बैठते थे—हमने पुस्तकों द्वारा श्री चैतन्य के चरित्र और उनका महाभाव और सन्तों के विषय में अनेक बातें सुनी हैं, हमारे बिचार

में यह भी है कि मन के बिकार रोके और जीते जा सकते हैं, हम यह भी जानते हैं कि सत्य का ही ग्रहण करना चाहिये, हमने गीता में आत्म सम्बन्धी उच्च और प्रशस्त शिक्षा पढ़ी है, और हम बड़े बड़े महात्मा और सन्तों के जीवन चरित्र सुनते हैं परन्तु इस समय में जब भूतात्मवाद का अधिक चर्चा है हम श्री रामकृष्ण में इन सब बातों का रूप देखते हैं उनके दर्शन मात्र से मनुष्य को संतोष और शान्ति प्राप्त होती है और ऐसे मनुष्य का भी दुख दूर हो जाता है जिसका इकलौता पुत्र मर गया हो; वह धन्य है जिन्होंने उनके दर्शन किये और जो उनके कृपा पात्र बने और वह भूमि भी धन्य है जहां उन्होंने जन्म धारण किया और वह युग भी धन्य ही है जिसने उनको देखा।

वह अत्यन्त उद्योगी थे—कभी कभी परम आनंद में मग्न हो जाते थे, कभी ध्यान में डूब जाते थे और कभी कभी अपने शरीर और पास की चीज़ों को बिल्कुल भूल जाते थे—वह कभी शिर से दुपट्टा बांध कर घूमते थे, कभी उन लोगों से वार्तालाप करते थे जो उनके पास आते थे और कभी बालकों के समान घूमते और खेलते थे—यह सब बातें उन

में ऐसी मिलती थीं कि मानो स्वाभाविक हैं परन्तु कोई मनुष्य जब तक उनके पास रहता था उनके हृदय की अद्भुत और विलक्षण गति को नहीं जान सकता था—पर उनसे अलग होते ही संसार का भार ऊपर दीखता था और उनका उद्योग असम्भव सा ज्ञात होता था ऐसी दशा में यदि हम उनकी शिक्षा का कोई अंश अपने जीवन में धारण करें तो हमको शांति प्राप्त हो जाय और निश्चय स्वर्गीय आनन्द मिले।

उनका रूप बिश्व बुद्धि मय, बिश्व भक्ति मय, और बिश्व प्रेममय था—अर्थात् वह इन सब के अवतार थे उन्होंने हमको हमारा सच्चा गौरव दिखलाने के लिये जन्मालिया था और उन्होंने यह जना दिया कि भारत भूमि ही परमार्थिक है और संसार में भारतवर्ष ही आत्म तत्व का केन्द्र और मूल स्थान है और भूत तत्व में कभी ऐसी शक्ति नहीं हुई कि जो आत्मतत्व को जीत सके वरन भूत तत्व आत्म तत्व से मिलते ही अपना रूप छोड़ आत्मा में मिल जाता है। उन्होंने यह दर्शाया कि मनुष्य केवल भूतात्मवाद के आश्रय नहीं जी सकता है और न उसको शांति या संतोष मिलता है ऐसे ही मनुष्यों को शांति सुख देने के लिये उन्होंने अवतार

लिया था—भूतात्मवाद का उन्होंने निराकरण नहीं किया वरन उसको अपनी सर्वगत गोद में लेकर पवित्र और ईश्वर भक्त बना दिया-अर्थात् भूत को आत्मा का साधक कर दिखलाया। उन्होंने अवतार लेकर हमको यह भी सिखाया कि हम अपने ही पैर, सत्य विद्या और भक्ति, पर कैसे खड़े हो सकते हैं और सिवाय इनके संसार के और सब पदार्थ अनित्य तथा क्षण भंगुर हैं परन्तु परमेश्वर की भक्ति जो सनातन हिन्दू धर्म है सदा अचल रहैगी।

उन्होंने संसार में शरीर धारण करके यह भी उपदेश किया कि हमको बालक तुल्य छोटी छोटी बातों पर झगड़ा नहीं करना चाहिये—और जब बहुत से लोगों ने मूर्त्ति पूजा का त्याग आरम्भ किया तो उन्होंने बाबू केशव चन्द्र से दृढ़ता पूर्वक यह कहा कि मूर्त्ति पूजा असत्य नहीं वरन सर्वदा सत्य है और जब संसार के सब लोग अपने ही मत को सत्य बतलाते हैं तो उनका यह कथन था कि संसार में जितने मत हैं वह सब उस दिव्य माता के पास जाने के मार्ग हैं।

हिन्दू समाज को उन्होंने यह शिक्षा दी कि आर्य ऋषि महात्मा जो धर्म मार्ग बता गये हैं वही सब से

अच्छा है और आर्य ऋषि, श्रीमद्भगवद्गीता, पुराण और तंत्रो ने जो नियम और मर्यादा नियत की है उसको वह आप भी पूर्ण रूप से मानते और गौरव करते थे। वह वैष्णव, शैव, शाक्त और अन्य उन सब मतों को जो भारतवर्ष में प्रचलित हैं एक ही अद्भूत रूप में घटाते थे। वह वर्ण और जाति विभाग के नियम को मानते थे और ब्राह्मण जो आहार देवी पर चढ़ाते थे उसको खालेते थे। वह अत्याचार को अच्छा नहीं समझते थे और अत्याचार की आड़ में जो दम्भ और कपट होता है उसके दूर करने के लिये सदा तत्पर रहते थे वह आश्रम प्रणाली को मानते थे और साधू और सन्तों का सन्मान करते और देवी, देव, और श्री गंगा जी का आदर सत्कार करते थे। जब कभी वह दूर भी श्रीराम, कृष्ण, हरि, काली वा शिव का मनोहर नाम सुनते तो वह आनन्द और समाधि में मग्न हो जाते थे। उनकी करुणा और दया सर्वगत थीं और वह सब पदार्थों को चेतन मय जानते थे जब कभी वह किसी मनुष्य को हरी घास के खेत में घूमते देखते थे तो घास को पिचते देख उनको बड़ा खेद होता था।

वह उन बिचारों का प्रकाश बड़ी ही उत्तमता से करते थे जो नित्य सत्य हैं और सांसारिक मनुष्यों के जीवन मूल तथा ज्योति रूप हैं और जिनके बिना कोई जीव संसार में एक क्षण भी दम नहीं मार सकता। नहीं उन्हों ने इन बिचारों को ही प्रकाश नहीं किया वरन ब्रह्मांड के अन्य लोक वासियों के नियम भी बड़ी उत्तमता से प्रगट किये तथाहि संसार में जो कुछ तत्व और सार होना सम्भव है उस सब को उत्तेजित और प्रगट किया निस्सन्देह उनके जीवन में ऐसे आश्चर्य जनक भाव मिश्रित देखे गये कि जिनके कारण उनका जीवन चरित्र लिखना कठिन है।

उनके समान कोई त्यागी नहीं हो सकता वह सन्यासियों के महाराज थे—उनके हृदय में सब दिव्य शक्ति उपस्थित थी परन्तु वह प्रकाश नहीं करते थे वरन यह कहा करते थे कि शक्तियों को खोज से परमेश्वर की प्राप्ति में बाधा पड़ती है। परमात्मा ने मनुष्यों के लिये उनमें वे शक्तियां दिखलाई जो इस युग के लिये आवश्यक हैँ और जिनको हम ग्रहण कर सकते हैं और वह क्रमशः मनुष्यों के सामने प्रगट हो जायगी।

अन्त में हम पंडित सरजू प्रसाद मिश्र, पंडित आदित्य राम भट्टाचार्य महामहोपाध्याय, प्रयाग निवासी और बाबू मुन्नालाल वकील अलीगढ़ को विशेष धन्यबाद देते हैं जिन्होंने इस परोपकारक ग्रन्थ के अनुवाद, शोधन और प्रूफ के देखने में क्लेश उठाकर सहायता की है ॥

विज्ञानानंद,
बेलुड़ मठ,
१९०४ ई० ।

श्रीगणेशाय नमः।

परमहंसचरित

अर्थात्

श्रीश्रीरामकृष्ण परमहंसका

जीवनचरित।

श्रुतिर्विभिन्ना स्मृतयोऽपि भिन्ना
नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम्
महाजनो येन गतः स पन्थाः॥

महाभारत।

पवित्र जन्मभूमि कामारपुकुर।

ज़िलअ हुगली मुहक़मे जहानाबादसे चार कोस पश्चिम पवित्र भूमि कामारपुकुर नाम एक ग्राम बसा है। वहां श्री १०८ रामकृष्णजीका जन्म हुआ। यह वर्द्धमान से १६ कोस दक्षिण तारकेश्वरसे १२ कोस पश्चिम घाँटालसे ८ कोस उत्तर दिशामें है।

रामकृष्णजीके माता और पिता ।

———:०:———

महात्मा रामकृष्णके पिताका नाम खुदिराम चट्टोपाध्याय था । गांवके लोगोंके बीच खुदिराम प्रसिद्ध निर्धन, निष्ठावान् और तेजस्वी ब्राह्मण गिने जाते थे । उनमें उनका आदर भी था । लोग कहते हैं—जबलों वे तलावमें नहाते थे, तबतक उसमें कोई उतरता न था । यह भी सुना गया है कि उनने यावज्जीवन निष्किञ्चन हो के भी शूद्रका दान प्रतिग्रह कभी न किया । श्रीरामकृष्णकी माताकी प्रकृति सुनते हैं, परम सौम्य थी । उनकी दया मया सबपर बनी रहती थी । किसीको भूखा देखतीं तो उसे खानेको कुछ दिये विना नहीं रहती थीं । वृद्धावस्थामें वे गङ्गाके तट रहनेके अभिप्रायसे अपने पुत्र रामकृष्णके समीप रानी रासमणिकी प्रतिष्ठापित दक्षिणेश्वरवाली कालीबाड़ीमें आ कर रहने लगीं । रामकृष्णके मुख्य भक्त रानी रासमणिके दामाद मथुरा बाबूकी बहुत दिनोंसे यह इच्छा थी कि रामकृष्णके परिवारके बीच प्रत्येक जनके निमित्त पृथक् २ कुछ पंजी संकल्प करें । सो रामकृष्णके निकट जब उनने अपनी उस

इच्छाको प्रकट किया; तब रामकृष्णने मथुरा बाबूको दानकी सम्मति न दी; केवल इतना ही नहीं, बरन बरवस रोक दिया। एतत्पश्चात् रामकृष्णकी माता जब दक्षिणेश्वरमें आ के बसीं तो मथुरा बाबूकी वही दानकी इच्छा फिर उदित हुई। सो उनने एक दिन रामकृष्णकी मातासे कहा—माता ! मैं आपको कुछ दान देना चाहता हूं। यह बात सुन के श्रीराम-कृष्णकी माता बोलीं—बाबू ! मैं यहां बड़े सुखसे हूं। मुझे कुछ भी दुःख नहीं है। मैं यहां नित्य गङ्गास्नान करती हूं और भगवतीका प्रसाद पाती हूं और तो अब किसी वस्तुका अँटका नहीं है। मथुरा बाबू यह बात सुन के भी वार २ दान ग्रहण करनेकी विनति करने लगे। रामकृष्णकी माता उनकी वार २ विनतिपर नहीं न कह सकनेके कारण अन्तमें बोलीं—तुम हमें दो पैसेकी सुर्ती तम्बाकू मोल ले दो। मथुरा बाबू यह बात सुन के चौकन्ने हो गये और बोले—अहो ! यदि आप ऐसी न होतीं तो श्रीरामकृष्णसा बेटा आपकी कोखमें जन्म कैसे लेता॥

———:o:———

श्रीरामकृष्णका जन्म।

---:o:---

श्रीरामकृष्णके पिता जब गया धाममें ठहरे हुये थे, रातमें उनने स्वप्न देखा कि गयाके स्वामी श्री-श्रीगदाधरजी दर्शन दे के कहते हैं—'मैं तुम्हारा पुत्र हो के जन्मूंगा'। यह स्वप्नकी बात सत्य है वा कपोलकल्पित है; इस सूक्ष्म भेदकी सचाई बोधगम्य करनेकी बुद्धिशक्ति अबलों जिनमें नहीं उपजी है, वे तर्क वितर्क करके खोद विनोद वा उधेड़ बुन किया करें परन्तु इस समय रामकृष्णके भक्त लोग ऐसी शिक्षा और विज्ञानविस्तारके दिनोंमें भी प्रत्यक्ष अनुभव कर चुके हैं और जिनके ऊपर रामकृष्णजीकी कृपा होगी, वे आगे अनुभव करेंगे कि *शकाब्द १७५६ सौर दशमी फाल्गुन शुक्ल द्वितीया बुधवारको कामारपुकुर गांवमें खुदिराम चट्टोपाध्यायके घर सौरीमें जो लड़का पैदा हुआ, वह मनुष्य नहीं किन्तु देवता है। उस समय भगवान् गदाधरकी कृपासे स्वप्नदर्शी खुदिरामजीने इस गूढ़ रहस्यका मर्म जान

---

* बङ्गाली सन् १२४१। सन् १८३६ ईसवी २० फेब्रुअरी।

लिया। सो उनने उस अनुपम पुत्रका नाम 'गदाधर' रक्खा। गांवके लोग उसी गदाधरको गदाई २ कह के पुकारते थे॥

———:o:———

रामकृष्णकी बाल्यावस्था।

गदाईका रूप न जाने किस सामग्रीका बना था कि लोग उन्हें देखते ही मोहित हो जाते थे। जो ही उन्हें देखता था आदरसे अङ्कमें ले लेता था, और जो उन्हें गोदमें लेता था उसके पास गदाई भी चाहसे जाते थे। केवल गदाईके दर्शनके लिये दिन भरमें अवश्य ही गांवकी स्त्रियां घरके कामको छोड़ के आती थीं॥

पांच वर्षके गदाई, गांवभरके सब लोगोंके घर जाते थे और सब लोग उन्हें चीन्हते थे और वह भी सबको जानते थे। गदाईके देखनेहीके मनोरथसे ज़मींदार बाबू लोग उनके पितासे कहा करते थे कि एक दिन आप गदाईको साथ ले के आइये॥

धीरे २ अवस्था जैसे बढ़ती थी वैसे गदाईकी अद्भुत बुद्धिशक्ति और अनुपम समर्थता देख के

लोग चकित हुए थे। गांवकी स्त्रियां पुत्रवती हो के भी गदाईके देखे विना चैन न पाती थीं। कोई किसी दिन गदाईको न देखती तो एक दूसरीसे पूछती थी कि कल गदाई नहीं दीखा। क्या कारण है? उत्तम मध्यम चाहे जैसा पदार्थ हो स्त्रियां उसे अपने बच्चोंको देतीं तो गदाईके निमित्त भी उसमेंसे कुछ अवश्य रख छोड़ती थीं और गदाईको जो कोई जो कुछ देता, उसे जातिका विचार छोड़ के वे विना खाये न रहते थे॥

वे पाठशालामें जाते तो रहे पर मन लगा के लिखना पढ़ना न सीख के खेलमें घूमा फिरा करते थे वरन अपने साथ दूसरे पढ़नेवाले बालकोंको भी खेलने ले जाया करते थे। उनको जोड़ना घटाना इत्यादि गणित कुछ भी नहीं आता था। हां, विद्यालयमें भगवन्नाम भले लिखा करते थे।

लोगोंके घरमें ठाकुरजीकी कोई मूर्ति बनती थी तो जबलों गदाई उस मूर्तिको देख के यह न कह दें कि मूर्ति ठीक बनी है, तबतक गृहस्थको संतोष नहीं होता था। जहां पहिचान के वे कहते थे कि मूर्ति इस अङ्गमें सुडौल नहीं बनी; सो लोग भी उस

अङ्गको देख स्पष्ट जान पाते थे कि गदाई जो कहता है, वह ठीक है ॥

गदाई इस बातका पता लगाये रहा करते थे कि कहां लीला उत्सव अथवा रामायण वा महाभारतकी कथा होनेवाली है और लीला तथा कथा आरम्भ होते ही ठीक वेलामें वहां पहुंचते और सुनते थे । गदाई-की स्मरण और अनुकरणशक्ति इतनी प्रबल थी कि जो एक वार सुनते थे उसे बहुत दिनोंतक स्मरण रखते थे और जिस भावको एक वार देखते थे ठीक उसका अनुकरण कर लेते थे ॥

उनकी वाणी भी बड़ी सुरीली थी । मधुर स्वर-से वे काली तथा राधाकृष्णसम्बन्धी भजन गान किया करते थे । जिनके सुननेके लिये लोग उनको बहुत आदर देते और अपने घर ले जाया करतेथे । क्या स्त्री क्या पुरुष, सब उनका गान सुनते और सुन के आनन्दित होते थे ॥

गदाधरके खेल भी अद्भुत ही होते थे । अपने समान अवस्थावाले बालकोंको साथ ले गांवके बाहिर कहीं निकल जाते थे और बालकोंमेंसे किसीको श्री-दामा और किसीको सुबलका सवांग सजा के आप

श्रीकृष्ण बन के कृष्णलीला करते थे जिसे किसान लोग दूरसे चुपचाप देखते और मनमें अचम्भित होते थे। कृष्णकी सकल लीला उतनी छोटी अवस्थामें भी भली भांति उन्हें विदित थीं। अत्यन्त अल्प अवस्थासे ही उनकी देवविषयक अगाध (गाढ़ी) भक्ति थी। बहुधा प्रतिमा बनाते और उसकी पूजा करते तथा समानवयस्क बालकोंका उसमें चित्ताकर्षण कर के उन्हें प्रमुदित रक्खा करते थे। छोटी ही अवस्थासे वे साधुओंका सङ्ग और साधुओंमें प्रीति करते थे। उनके गांवमें ज़मीन्दार बाबुओं-का स्थापित सदावर्त्त था। उसमें कभी २ अनेक साधु संन्यासी आते थे। गदाई उन्हीं साधु संन्यासियोंके पास जा कर बैठे रहते थे। साधु लोग भी उनका आदर करते थे और कभी २ तिलक भी लगा देते थे। कभी २ साथ घर देखने आते थे। एक दिन गदाई लंगोट पहिन के घरमें आ के बोले-देखो! देखो! हम कैसे साधु लगते हैं। आज साधुओंने हमें संवारा है और रोटी खिलाई है। आज हम घरमें कुछ न खायंगे। इस बर्तावके पश्चात् पता लगा कि गदाई उस दिन जो नया कपड़ा पहिन के साधुके पास गये थे उस कपड़ेको उनने चीर के तीन टुकड़े कर लंगोट बना ली॥

पहिले ही कह चुके हैं कि बड़ी थोड़ी ही अवस्थामें लोग उनकी अद्भुत प्रतिभा (बोधशक्ति) से अचम्भित हो गए थे। कहनावत है कि गांवमें किसी भले मानुषके यहां श्राद्धमें बड़े दूर २ से बहुतेरे ब्राह्मण पण्डित आ के जुटे थे। सभाके दिन पण्डितोंके बीच परमार्थविषयक विशेष चर्चा-विचार उठा। गदाई १२ वा १३ वर्षका एक बालक हो के भी सभाकी एक ओर बैठ के चुपचाप सब बातें सुनते थे और जब देखा कि पण्डितमण्डली किसी प्रकारसे परमार्थतत्त्वका सिद्धान्त नहीं बांध सकती है, तब आप उनके बीच जा के दो एक ऐसी बातें भाषण कीं कि सब सभाके पण्डितोंका मुह बन्द हो गया और विवाद के मूल मतभेदका भङ्ग हो के तत्त्वका निर्णय हुआ॥

———:o:———

रामकृष्णकी नवीन तरुणावस्था।

* ৺ खुदिराम चट्टोपाध्यायको तीन बेटे और दो बेटियां थीं। गदाई उनके बुढ़ाईके लाड़िले थे। गदाईसे छोटी एक बहिन थी। गदाईके जेठे भाई रामकुमार चट्टोपाध्याय महाशयने कामारपुकुर नाम ग्राममें एक पाठ-

* ৺ यह चिन्ह स्वर्गवासीका है। इससे समझना चाहिये कि खुदिरामका स्वर्गवास हो चुका था।

शाला स्थापित की थी । वे छातू बाबूके तड़में थे । इस कारण बहुत स्थानोंसे निमन्त्रणपत्र उन्हें आते थे ॥

सोलह वा सत्रह वर्षकी अवस्थामें गदाई अपने बड़े भाईके साथ कलकत्तेमें उनकी पाठशालामें आ के रहने लगे परन्तु वहां भी वे पढ़ने लिखनेमें मनोयोगी न हुए । गांवमें जैसे घूमा करते थे, वैसे ही वहां भी इधर उधर घूमने लगे । इन्हीं दिनोंकी बात है कि गदाई एक दिन बोले-जिस विद्यासे विद्यावान्को केवल केला और चावल बांधनेको मिलते हैं; हमें ऐसी विद्या पढ़नेका प्रयोजन नहीं है । कलकत्तेमें वास करते हुए वे किसी गृहस्थके यहां विष्णुपूजाके पुजारी थे ॥

बङ्गाली सन् १२५९में स्नानयात्राके दिन कलकत्तेके जानबाजारकी प्रसिद्ध रईस रानी रासमणिने दक्षिणेश्वर-नामक स्थानमें बहुत धन लगा के एक कालीबाड़ी बनवाई। प्राणप्रतिष्ठाके दिन बड़े ठाट बाट और धूम धामसे उत्सव हुआ था। श्रीरामकृष्णके बड़े भाई उसी कालीबाड़ीमें पूजा करनेके निमित्त नियुक्त हुए। उस दिन श्रीरामकृष्णजी भी अपने भाईके साथ वहां सारा दिन उपस्थित थे पर वहांकी कोई भी वस्तु न खाई । सांझको एक पैसेकी लाई मोल ले के खाई और तत्पश्चात् कलकत्तेको लौट

गये। इसके छ वा सात दिन बीतनेपर पुनः अपने भाईके अनुसन्धानमें दाक्षिणेश्वरको आये और उसी समयसे आप भी भाईके साथ वहीं रहने लगे ॥

एक दिन मथुरा बाबू श्रीरामकृष्णका मनोहर रूप देख के प्रसन्न हुये और चाहा कि उन्हें पूजाके कार्यपर नियुक्त करें । रामकृष्ण नौकरी करना नहीं चाहते थे पर जेठे भाईके बहुत कहने सुननेसे पूजाका कार्य स्वीकार किया ॥

रानी रासमणि जातिकी केवट थीं । इस कारण उनके प्रतिष्ठापित देवालयमें किसी पङ्क्तिका ब्राह्मण नहीं जीमेगा; यह बात जान के रानी रासमणिने अपने देवालयको अपने इष्टदेवके नामपर उत्सर्ग कर दिया । उतनेपर भी रामकृष्णका मन खटकता ही रहा । पहिले पहिल तो वे पञ्चवटीके नीचे अपना भोजन आप बना कर खाते और कभी २ खाती वेला रोते २ कहते थे— "मातः! धीवरका धान्य खिलाती है" ॥

पूजाका कार्यभार उठाने अनन्तर वे ऐसे एकाग्र-चित्त हो के पूजा करते थे कि उनकी पजनपद्धति देख के लोग चकित और चमत्कृत होते थे। देवीकी पूजा करती वेला उनको देखनेसे लोगों को ऐसा बोध होता

था वे कि देवीको साक्षात् प्रत्यक्ष देखते हुये पजा कर रहे हैं अर्थात् भगवती स्वयम् उनके साह्मने आ के पजा लेती हैं।

कभी २ वे देवीके निमित्त अपने हाथोंसे फूलोंकी माला गूँथते थे; कभी २ देवीके चरणोंपर सुन्दर बिल्वपत्र, और जपापुष्प (ओढउलका फूल) अर्पण कर के प्रमुदित होते थे। कभी २ रामप्रसाद, कमलाकान्त, नरेशचन्द्र वा अन्य भक्तोंके बनाये काली देवीके भजन मन लगा के गान करते और भावमें मग्न रहते थे। और कभी २ विलख २ के कहते थे—मैया! मुझपर दया कर मैया! मुझे दर्शन दे, न मैं धन चाहताहूँ, न प्रतिष्ठा चाहताहूँ, मुझपर दया कर मैया!॥

एक समय रामकृष्णजी अपने हाथसे मृत्तिकाकी एक ऐसी सुन्दर शिवमूर्ति बना के पूजन करते थे कि मथुरा बाबू उसे देख स्तब्ध हो गये। शिवमूर्ति तथा उनके वाहन नन्दी वृष दोनो अङ्ग प्रत्यङ्गमें ऐसे सुडौल सुथरे बने थे कि देखते ही बनता था। जिसी ओर देखो प्रतिमाकी असीम मधुर मञ्जुल सुन्दरता थी। यह देख के मथुरा बाबू बहुत प्रसन्न हुये और रानी रासमणिके निकट जा के बोले—ऐसा योग्य पुजारी प्राप्त हुआ है कि निस्सन्देह शीघ्र भगवती जागती ज्योति होंगी॥

रानी समणि भी श्रीरामकृष्णकी भावभक्ति देख के दिन २ उनपर प्रसन्न होती थीं। रानी जब मन्दिरमें आती थीं, तब रामकृष्णजीके मुखसे एकाध भजन अवश्य सुनती थीँ। एक दिनकी बात है कि रामकृष्णजी भजन गाते थे और रानी रासमणि चुपचाप उसे सुनती थीं पर उनका मन उस समय भजनके श्रवण में न लग के किसी मुक़द्दमेंकी ओर चला गया। उसी समय श्रीरामकृष्णजी-ने कहा-"क्या यहां भी मुक़द्दमा है;" इतना कह के उनने रानीके पीठपर एक भरपूर थप्पड़ मार दिया। सबने तो जाना कि रानी रामकृष्णपर अप्रसन्न होंगी पर रानी तनिक भी अप्रसन्न न भईं प्रत्युत महात्मा रामकृष्णकी अद्भुत दिव्य बोधशक्ति देखके अपने मनमें महा अचरज मानती भईं॥

पूजा करते २ कभी २ वे इतना बेसुध हो जाते थे कि उस समय उन्हें जाग्रत्‌का अनुसन्धान ही नहीं रहता था। एक दिन वे देवीकी स्वच्छन्द आरती कर रहे थे। सो विलम्ब-तक आरती उतारते रहे; यहांतक कि जो भक्त लोग विजय-घण्ट इत्यादि बजाते थे उनके हाथ थक गये पर तब भी आरती पूरी न भई। निदान उन लोगोंने विशेष लक्ष्य दे कर देखा तो जान पडा कि रामकृष्णजी बाह्यज्ञानहीन हो

गये हैं। कलकी पुतलीकी नाईं उनके हाथसे घण्टा बजता और आरती हो रही है पर बाह्यमें वे संज्ञाहीन हैं। थोड़ी देरमें उनका मुह लाल हो गया और पागलके समान मातः! २ करते २ भूमिमें भहरा कर गिर पड़े। लोग उन्हें उठा के बाहिर लाये। उनकी छाती आँसूसे भींज गई थी। वे विह्वलचित्त पड़े रहे और बीच २ में माता! माता! कह के पुकार उठते थे। उन्हें उस सारी रात तथा दूसरे दिन दिनभर बाह्य चैतन्य न भया। दूसरे दिन उनके मुखमें दूसरेको भोजन छोड़ना पड़ा। यह दशा कई दिन बनी रही॥

कुछ दिन पीछे उन्हें देवीके पुजारीके पदसे छुट्टी मिली क्योंकि उनका भाञ्जा हृदय मुख्योपाध्याय उनकी सन्ती पजा करने लगा। श्रीरामकृष्णजीके मनमें जिस दिन आता था, उस दिन वे आप पजा करते थे परन्तु विधिबद्ध पद्धति उनके पक्षमें असम्भव हुई क्योंकि मनमें वे कब किस भावमें आवें इसकी कुछ स्थिरता न थी। उनकी यह स्थिति गति देखके लोगोंने पक्का कर के जाना कि वे पागल हो गए हैं। मथुरा बाबने बड़े यत्नसे उनकी चिकित्सा कराई पर किसीसे कुछ भी लाभ न भया। वे अपने भावमें भूले रहते थे॥

कुछ दिन बीतनेपर उनकी बावलेकीसी स्थिति घट चली। उस समय लगभग चौवीस वर्षकी अवस्थामें उनका विवाह किया गया। उनने विवाह करनेमें कुछ असम्मति नहीं जनाई। उनने अपनी अन्तिम अवस्थामें किसीसे कहाथा कि—'विवाहके समय मेरा विचार तो यह था कि मैं अधिक काललों गृहस्थ रह के संसार-धर्म निर्वाह करूंगा पर न जाने कहांसे कैसी बयार बही कि उसने आके मेरा मन उलट पलट कर दिया॥

भगवान् रामकृष्ण विवाहके निमित्त प्रसन्नता-पूर्वक देशको गए। उनके गाँवके निकट जयराम-वाड़ी नाम एक दूसरा गाँव है। उस गाँवके निवासी रामचन्द्र मुख्योपाध्यायकी कन्याका जो पाँचवर्ष की थी श्रीरामकृष्णजीसे पाणिग्रहण भया। विवाह होने उप-रान्त उनकी फिर वही भावावस्था उठी। जिससे वे दक्षिणेश्वरमें जा के बावलेकी नाईं अपने भावमें मग्न रहते थे। बीच२में मा २ कह के वे पुकारते और जगदम्बासे वार्तालाप किया करते थे। लोग तो उन्हें पागल मानते थे पर वे कल्याणके लिये गोपनमें भाँति २ से आत्मसाधन करते थे। वे और किसीसे कुछ भी नहीं सीखते थे परन्तु जगन्माताको सुना के कहते थे कि माता! आप आके

मुझे सिखा तो मैं सीखूँ। भगवतीने भी उन्हें नाना भावसे नाना साधन सिद्ध करना सिखाया था ॥

इस युगमें भगवान् रामकृष्ण साधकोंके लिये निदर्शन हुए। उनने जगदम्बासे विनति की—'माता! तू आप यदि किसी प्रकारसे सिखा तो मैं सीखूं'। जगदम्बाने भी अलक्ष्य भावसे सिखाया कि कनक, कामिनी, और अभिमान, इन तीनो फन्दोंसे सर्वथा बचना चाहिये। उसी शिक्षाप्राप्तिके कारण एक दिन रामकृष्णने गङ्गातटपर बैठ एक हाथमें मिट्टी और दूसरेमें रुपया ले के अपने मनसे कहा कि 'हे मन! यह मिट्टी है, जड़ पदार्थ है, इसमें धान उत्पन्न हो के चावल होता है पर इससे सच्चिदानन्द नहीं मिलता, इसी प्रकारसे रुपयेके विषयमें भी वे बोले कि 'हे मन! यह सिक्का है, इसमें बीबीका चेहरा है। इससे भी धान चावल होता है, दश प्राणियोंका भोजन चलता है पर सच्चिदानन्द प्राप्त नहीं होता। अतः मिट्टी और रुपया एक हैं'। निदान "रुपया मिट्टी, मिट्टी रुपया" ऐसा बोल के उनने दोनोको एक हाथमें ले के गङ्गाजीमें फेंक दिया। स्त्रीके विषयमें भी उनने इसी प्रकारका विचार कर के स्त्री भी छोड़ दी ॥

अहङ्कारको नाश करनेके लिये वे कुछ दिनोंतक भांति२

की साधना साधते थे और मातासे प्रार्थना करते थे कि माता! मेरा अहङ्कार नाश कर दे री माता! जिससे मैं 'निपट दीन हीन हूं' यह भाव मेरे मनमें सर्वदा जागरूक रहे। इन्ही दिनोंकी बात है कि वे झाड़ू ले के पायखाना झाड़ते थे अथवा कालीबाड़ीके भिखमङ्गोंकी जूठी पतारियां माथेपर उठा के गङ्गामें ले जा कर फेंक आते थे ॥

कनक, कामिनी और अहङ्कारके भाव बुझनेपर एक ब्राह्मणी श्रीरामकृष्णजीको देखने आई। इस स्त्रीने बहुत दिनोंसे सुना था कि गङ्गाके तीर एक महापुरुष टिका है। श्रीरामकृष्णने ब्राह्मणीको दिव्यभावयुक्त जान के हृदय-नामक अपने भाञ्जेसे कहा कि उस स्त्रीको यहां बुला लाओ। बुलानेपर श्रीरामकृष्णके समीप वह स्त्री पहुंच कर जान गई कि ये ही महापुरुष हैं ॥

ब्राह्मणी सर्वशास्त्रज्ञ थी। संस्कृतभाषा उसकी अच्छी अभ्यस्त थी। वैष्णवचरण इत्यादि पण्डितान भी उसका पाण्डित्य देख के अचरज माना था। आजतलक रामकृष्णजीको सब लोग पागल समझते थे। उस दिन उस ब्राह्मणीने आ के सबको पहिले पहिल समझाया कि रामकृष्णको कोई रोग नहीं है और न वे पागल हैं।

उनमें पागलपनेके जो लक्षण लक्षित होते हैं वे (लक्षण) शास्त्रनिरूपित भावावेशके हैं ॥

भगवान् रामकृष्ण सब प्रकारके धर्मोंकी पृथक् २ व्यवस्थानुसार अनुष्ठान कर के निष्ठा प्राप्त की । तन्त्रोक्त साधनसे सिद्धि प्राप्त करनेपर उनके पास तोतापुरीनामक सिद्ध पुरुष आये । श्रीरामकृष्णने उनसे योगाभ्यासकी शिक्षा पाई और योग कर के तीन दिनतक निर्विकल्प समाधिस्थ बने रहे । यह देख तोतापुरी आश्चर्यसे भर कर बोले– 'मैंने इस भूमिकाको चालीस वर्षोंमें पाया है, पर आपने तीन ही दिनमें इसे प्राप्त कर लिया। यदि आप ऐसे न होते तो मैं आपके पास इतने दिनोंतक ठहरता कैसे ? '। तोतापुरी कहीं भी तीन दिनसे अधिक नहीं ठहरते थे परन्तु श्रीरामकृष्णजीका गुण देख के ग्यारह महीनेतक वे दक्षिणेश्वरमें टिके रहे । इन्हीसे श्रीरामकृष्णने संन्यास लिया और सबसे पहिले इन्हींने श्रीरामकृष्णको ' परमहंस ' कह के पुकारा ' ॥

तदनन्तर एक २ कर के उनने पञ्चनामी, बाउल, सिक्ख, और मुसल्मानी इत्यादि मतोंको व्यवस्थानुसार अनुष्ठान किया और आश्चर्य यह है– जब वे जिस मतके अनुसार अनुष्ठान करनेमें लगे थे तब उस मतका एक २

सिद्ध पुरुष आ के उनसे भेंट करता था। चाहे अनुष्ठान कठिनसे कठिन हो पर उन्हें उसके प्राप्त करनेमें तीन दिनसे अधिक काल नहीं लगता था॥

मुसल्मानी धर्मानुसार अनुष्ठान करतीवेला परमहंस महात्माने प्याज़ खाया था। उस वेला वे किसी देवमन्दिरमें नहीं घुसते थे और न हिन्दू मतका भाव रखते थे। मुसल्मानी मतानुसार तीनं दिन बर्ताव करनेपर श्रीरामकृष्णजीको एक बड़ी दाढ़ीवाला तेजोमय मनुष्य दिखाई दिया॥

इसाई धर्मका कोई सिद्ध पुरुष तो परमहंस महात्माके समीप नहीं आया परन्तु श्रीरामकृष्ण महात्मा बड़े विख्यात दाता और गुणवान् शम्भुचरण मल्लिक महाशयसे बाइबिलका पाठ सुनते थे और एक दिन यदुनाथ मल्लिककी वाटिकामें घरके भीतर बैठे थे कि वहां टंगी हुई ईसा मसीहकी तसवीरसे एक कला निकल के उनके शरीरमें घुस गई; ऐसी बात परमहंस महात्माके मुखसे बहुतोंने सुनी है॥

———:o:———

श्रीरामकृष्णकी पिछली युवावस्था।

बारह वर्षतक भगवान् रामकृष्णने भिन्न २ मता-

नुसार भारी २ अनुष्ठान कर के समस्त धर्मोंकी निष्ठा पाई; यह बात रानी रासमणिको विदित हुई । सो वे परमहंस महात्मामें और भी श्रद्धा तथा भक्ति करने लगीं। मथुरा बाबू स्वामीको साक्षात् भगवान् समझ के बड़े यत्नसे उनकी सेवा शुश्रूषा करते थे। जो बात परमहंस महात्मा चाहते थे, मथुरा बाबू वही करते थे॥

भगवान् रामकृष्ण आप छिपे २ साधन करते थे तो भी जो किसी बड़े पण्डित वा साधक जनका नाम सुनते थे तो उससे भेंट करनेके निमित्त जाते थे। सर्व प्रकारकी धर्मसम्बन्धिनी सभाओंसे हेल मेल रखते थे और सबके साधु सन्त वा सिद्ध मनुष्यका आगमनसमाचार पाते तो उसके पास जाते थे॥

जयपुरके नारायणशास्त्रीनामक एक प्रसिद्ध विद्वान्ने उनसे दीक्षा ली। ये न्यायदर्शनके बड़े भारी पण्डित थे। बङ्गालमें जब रहे तब बहुत कर के दक्षिणेश्वरमें बसे थे। दक्षिणेश्वरके निवासकालमें कभी २ श्रीपरमहंस महात्मा इन पण्डितजीसे न्यायशास्त्रकी चर्चा सुनते थे। जब पण्डित महाशय बड़े हर्षसे न्यायके भारी २ तत्त्व पढ़ते थे; उस समय परमहंसजी चुप चाप बिछौनेपर लेटे सुना करते थे । पण्डित महाशय

न्यायकी गूढ २ बातें बड़ी पण्डिताईसे पूरी २ बताते थे और श्रीपरमहंस महात्मा तब भी लेटे सुनते रहते थे और थोड़ी २ देरमें बीच २ में साधारण रीतिसे दो एक बातें पण्डितसे पूछते थे कि क्या आपने यही बात कही है वा नहीं? उसे सुनते ही पण्डितजी अचम्भित हो जाते थे ॥

बर्द्दवानकी राजसभामें पद्मलोचननाम एक सिद्ध पण्डित रहते थे। यह बात सुन के परमहंस महात्माने चाहा कि उनसे भेंट करें। यह बात मथुरा बाबूको ज्ञात भई और उनने परमहंस महात्मा को वहां जाकर पण्डितसे भेंट करनेकी अनुमति दी किन्तु श्रीरामकृष्णजी न गये। कुछ दिन बीतनेपर सुनाई पड़ा कि बर्द्दवानके वही पण्डित पद्मलोचन आड़ियादह नामक गांवकी किसी वाटिकामें आ के ठहरे हैं। यह बात सुन के परमहंस महात्माने पाहिले तो अपने भाञ्जे हृदय मुख्योपाध्यायको वहां भेज दिया और कहा– 'देख तो आओ कि पण्डित अभिमानी हैं कि नहीं'। हृदय बाबू वहां गये और देख आ के कहा-पण्डित अभिमानी नहीं है। यह बात सुन के परमहंस महात्मा हृदय भाञ्जेके साथ हो पण्डितको देखनेके लिये गये

और भेंट कर के अपने हार्द भावका एक ऐसा भजन गाया कि उसे सुन के पण्डितजी पानी २ होगये और उन्हें प्रत्यक्ष भगवान् जान के वार २ स्तुति की ॥

इन्देशका गौरीदत्तनामक एक पण्डित भारी विद्वान् उनसे भेंट करने आया। उसने भी इन्हें साक्षात् भगवान् मान के पूजा ॥

जिस समय ब्रह्मसमाजके मुख्य आचार्य बाबू देवेन्द्र-नाथ ठाकुर आचार्यकी वेदीपर बैठते थे; उस समय पुराने ब्रह्मसमाजी लोग कहते थे कि सभाकी एक अद्भुत आभा होती थी। एक समय परमहंस महात्मा मथुरा बाबूके साथ समाज देखने गये और वहां युवा केशवचन्द्रको देख के मथुरा बाबूसे बोले—'इस लड़केकी बंशीका चारा मछलीने थाम्भा है और शेष जितने उपासक हैं, वे तो जान पड़ते हैं कि मानो ढाल तलवार बांध कर बैठे हैं' ॥

पक्की युवावस्थामें एक समय परमहंस महात्मा तीर्थयात्रा करने मथुरा बाबूके साथ गये। परमहंस जहां जा के जो आज्ञा देते थे, मथुरा बाबू वही संपादन करते थे। इस तीर्थयात्रामें मथुरा बाबूके अस्सी सहस्र रुपये व्यय हुए ॥

काशीजीमें एक बंगाली वीणा बजानेमें बड़ा निपुण सुनाई दिया । परमहंस उसकी वीणा सुननेके लिये उत्कण्ठित हुए। मथुरा बाबूने उसको अपने यहां बुलाया पर वह नहीं आया। सो परमहंस देव हृदयको साथ ले कर आप उसके घरपर गये। उसने बड़े आदर भाव-से उन्हें ग्रहण किया और वीणा सुनाई। परमहंस महात्मा उसकी वीणा सुन के समाधिस्थ हो गये थे ॥

श्रीरामकृष्ण काशीसे वृन्दावनको गए और वहां छिपे २ वैष्णवका भेष धारण कर फिरने लगे। परमहंस महात्मा भगवन्मूर्ति देखते ही समाधिमें डूब जाते थे। वृन्दावनमें वन २ घूमते कब २ कहां २ उन्हें क्या २ भाव होता था, उस सबका पूरा वर्णन करना यहां असम्भव है ॥

श्रीरामकृष्णका जगत्में उजागर होना।

ऊपर जो वर्णन हुये उन भावोंमें कुछ दिन रहने-पर उनको साधारण लोग जानने लगे। इसका कारण यह है कि इस समय केशवचन्द्रसेन अपने शिष्योंके साथ उनके दर्शनार्थ जाया करते थे। उसी सूत्रसे धीरे२

उनके पास भीड़ जमने लगी। केशव बाबूके आनेसे चारो ओर यह हल्ला हो गया कि दक्षिणेश्वरमें श्रीरामकृष्ण परमहंस नामके एक महापुरुष हैं। उनकी अद्भुत शक्ति देख के केशवचन्द्र भी आश्चर्यित हो गये। घर २ यह बात फैल गई और स्वामीके दर्शनके लिये लोग आने लगे।

प्रातःकालसे ले के दिनभर लोग उनके घर आते थे और वे भी उनके साथ सारा दिन धर्मकी चर्चा करते रहते थे। केवल दोपहरको एक वार थोड़ा विश्राम कर लेना चाहते थे। शेष दिनभर फिर आरामसे विश्राम नहीं करते थे क्योंकि उक्त विश्रामके समयमें भी लोग उनके पास रहते थे।

जिन केशवचन्द्रके व्याख्यान सुननेके लिये सारी पृथिवीके लोग दौड़ आते, वे ही केशवचन्द्र अनपढ़ श्रीरामकृष्णके श्रीमुखसे कथा वार्ता सुननेके लिये दक्षिणेश्वरमें जाते और चुप मार के बड़ी नम्रतासे बैठते थे।

सैकड़ों हिन्दु और इसाई तथा पण्डित शशधर तर्कचूड़ामणि, पण्डित विजयकृष्ण गोस्वामी, पण्डित शिवनाथ शास्त्री इत्यादि ब्रह्मसमाजी परमहंस महात्मा-से उपदेश सुननेके लिये उनके पास बीच २ में जाते थे। कोई २ तो कभी उन्हें अपने घर भी ले जाते

थे। जिसके घर जब कभी परमहस महात्मा जाते थे, उसके यहाँ बड़ा उत्सव होता था। अनेकानेक जन उनका आगमन सुन वहां जाते थे।

इस प्रकारसे असंख्यात स्त्रियों तथा पुरुषोंकी धर्ममें प्रवृत्ति उत्तेजित कर घनेरे पापियोंका उद्धार कर के धर्मको सहजमें सब तरहके मनुष्योंको समझा के और अपनी अपरिमित शक्ति और अथाह महत्त्वको भली भांतिसे सुझा के वे महापुरुष बङ्गाली . सन् १२९३ सालके सौर ३१ श्रावण अर्थात् सन् १८८६ ई० १६ अगस्त आदित्य वारकी रात्रिमें एक बजे अपने स्वरूपको प्राप्त हो गये॥

——:o:——

श्रीरामकृष्णके बालवत् चरित्र।

संसारका स्वाभाविक नियम है कि अवस्था बढ़नेके साथ २ बालक तरुण होता है और तरुण बूढ़ा होता है। बाल्यावस्था सुखकी होती है; यह कविकी कविता कल्पित करनेका विषय है। परन्तु भगवान् रामकृष्णके अनोखे चरित्रमें वह नियम भङ्ग भया है। क्योंकि वे जन्मभर बालवत् ही व्यवहार कर गये। बुढ़ौतीमें भी जो कोई उन्हें देखता वह बालकवत् ही पाता और

अपना जन्म सुफल लेखता था। इस विषयपर बहुत-सी अद्भुत वार्ताएँ कही जा सकती हैं और हम लोग भी उनके विस्तृत जीवन चरितमें इस बातको भली भाँतिसे लिखनेका यत्न करेंगे; अभी तो निरी दोएक वार्ता लिखता हूँ ॥

कोई २ तो उनका अद्भुत बाल्यभाव देख के उन्हें असभ्य समझते थे पर जिनका भाग्य अच्छा था वे उनकी अवस्था बढ़नेपर भी बालकवत् देख के आनन्दित होते थे। जैसे लड़के देरलों कपड़ा नहीं पहिने रह सकते वैसे ही प्रत्यक्ष देखा है कि श्रीपरमहंस महात्मा भी उसी प्रकार देरलों वस्त्र पहिने नहीं रह सकते थे। उनका कटिवस्त्र तो सदा खुला रहता था और जैसे बालकका कपड़ा खुल जानेपर उसे लाज नहीं लगती वैसे ही प्रत्यक्ष दृष्टि पड़ा है कि श्रीरामकृष्णके सामने सैकड़ों राजा, महाराजा, गुणी और ज्ञानी बैठे रहते थे पर उस समय भी कटिवस्त्र पूरा खुल कर उन्हें किसी-की लाज नहीं लगती थी ॥

एक समय परमहंसजीके गिर पड़नेसे उनका एक हाथ टूट गया । उससे उन्हें बहुत दिनोंतक हाथकी पीड़ा भोगनी पड़ी । उन्हीं दिनोंकी बात है

कि हमारे एक मित्र उन्हें पहिले पहिल देखने गये। मेरे मित्रने मुझसे कहा कि मैंने पहिले परमहंस महात्माको जा के प्रणाम किया, तब श्रीरामकृष्णने मुझसे पूछा-"तुम कहांसे आते हो"? मैंने उत्तर दिया—"मैं कलकत्तेसे आता हूँ"। तब परमहंस महात्मा हाथसे मन्दिरोंको दिखा कर बोले कि "तुम यह सब देखने आये हो"? मैंने कहा-"नहीं, महात्मा! यह सब देखने नहीं आया हूँ; मैं तो आपके दर्शनको आया हूँ।" यह सुन के कि मैं परमहंस महात्माको देखने आया हूँ; परमहंस महात्मा लड़कोंके समान रोते २ बोले— मुझे क्या देखोगे बाबू! मेरा हाथ टूट गया है। आह! बड़ी पीड़ा होती है। मैं उनका भोले बालकोंके समान रोना सुन के आश्चर्यित हो गया। कुछ न सूझा कि क्या कहूँ। तब बड़ी देरके अनन्तर रोना चुप करानेके लिये उनसे कहा-यह सब अच्छा हो जायगा। कुछ डर नहीं है। मेरी बात सुन के वे भोले बालकके समान प्रमुदित हो के बोले—क्या अच्छा हो जायगा? २। तदनन्तर तत्क्षण पासके किसी मनुष्यको बुला के बोले— "ये बाबू कलकत्तेसे आये हैं और कहते हैं—मेरा हाथ अभी अच्छा हो जायगा" ॥

एक दिन रामबाबू (१) और मनमोहनबाबू (२) एक गोभी लेकर परमहंस महात्माके पास गये थे। उनका अद्भुत बाल्यभाव देख के दोनो चकित हुए। उस समय परमहंस महात्माके पेटसे पतला दस्त होता था। श्रीरामकृष्णने चाहा कि इस बातको हृदय बाबू न जानने पावें; इस लिये उस गोभीको उनने छिपा के रखना चाहा। दैवात् हृदय बाबू उसी समय वहां आ पड़े तब तो परमहंसजी ऐसी सुधाईसे लड़केके तुल्य डरे और बोले— "नहीं हृदय! हमने इन्हें गोभी लाने नहीं कहा था। ये लोग आप ही यह लाये। मैंने तो कुछ भी इसकी चर्चा नहीं की; मैं सत्य २ ही कहता हूँ॥"

कोई २ भक्त श्रीपरमहंसके पास रातभर विताते थे और वे भी जिसे चाहते थे कि रहे, जब तब अनुरोध कर के रख लेते थे। एक दिन कई लोग वहां रातको सो रहे थे। आधी रात बीत गई थी। सब गाढ़ी नींदमें सोये थे। इसी समय गङ्गामें ज्वार आनेका शब्द सुनाई दिया। उस शब्दको सुन के श्रीपरमहंस तुरन्त बिछौनेपरसे उठ बैठे और सोते जनोंसे बोले— "ऐ

---

१ परमहंस महात्माके भक्त स्वनामसे प्रसिद्ध डाक्टर रामचन्द्रदत्त F. R. S. थे॥

२ श्रीमनमोहनमित्र राम बाबूके भाई बङ्गाल आफिसके कर्मचारी और श्रीरामकृष्णके प्रिय भक्त थ॥

बालको ! उठो २। ज्वार देखने आओ। यह कह के सबको शीघ्र बुला के आप नङ्गे दौड़ गये और ज्वार देख के आनन्दसे नाचने लगे। जिन्हें ये बुला आये थे; वे धोती सँभालते थे कि क्षणमें ज्वार शान्त हो गया। जगे लोगोंने गङ्गातटपर जा के देखा कि परमहंस देव नङ्गे नाचते हैं। उन लोगोंको देख के वे बोले-"अहो! इतनी देर कर के क्यों आये ?" वे लोग बोले—"देर तो नहीं की। कपड़ा संभालते चले ही तो आते हैं।" परमहंस जी बोले— "धिक् सारो कपड़ा संभालनेतक ज्वार थंभा रहता है क्या ?" ॥

दक्षिणेश्वरमें किसी घरमें अध्यात्म रामायण होता था। उसे वह सुननेको जाया करते थे। कथामें सुना कि रामनामके उच्चारणसे पवित्रता होती है। कालान्तर-में एक दिन उनने सुना कि कथा बाचनेवाले व्यास शौचको गये हैं। यह सुन उन्हें सन्देह भया। सो व्यासके आनेपर उससे उनने घबड़ा कर पूछा— "यह क्या बात है ? इतना रामनाम जप के भी तो आप शुचि नहीं भये जिससे शौचको गये"। व्यासजी उनका तादृश भोलेपनका भाव देख के बोले—"भैया! राम २ कहनेसे मनकी मलिनता मिटती है ॥

किसी दिन विश्वविद्यालयका एक उपाधिधारी विद्वान् युवा विद्यार्थी उनसे जा के बोला—"आपकी जो समझ है, वह आपके मस्तिष्कका विकार है।" यह सुनके परमहंस मा! मा! करते कालीबाड़ीकी मूर्तिके ढिग गये और वहांसे लौट आ के बोले—"मा कहती हैं कि मेरे मस्तिष्कका दोष नहीं है किन्तु तुम्हारी समझकी भूल है"। परमहंसदेवकी दयासे उस युवाकी बुद्धि सुधर गई और अब उसने भी संन्यास ग्रहण कर लिया है॥

एक दिन काली मातासे उनने छड़ला के कहा-"माता! आपने मुझे मूर्ख क्यों किया? मूर्ख शब्द तो गाली है। उसी समय उन्हें भाव आया और उसमें वे देखते क्या हैं कि आगे एक पहाड़ खड़ा है। उसके देखनेसे उनकी समझमें यह आया कि माता पूछती हैं-कितनी विद्या लोगे। तब वे बोले— नहीं मा!॥

उनके विवाहकी बरातमें घरवाले साथ बाजा न ले जा सके; इस लिये सब खेद कर रहे थे। सो वे आप अपने मुहका बाजा बजाते २ बरात ले गये॥

एक दिन मथुरा बाबूने उन्हें बड़े दामका दुशाला, चिउलीका कपड़ा और कामदार जूता पहिनाया। थोड़ी देरमें वह चिउलीका कपड़ा शरीरपरसे खुलके गिर गया।

उसी समय वे बोले— रजोगुणका भाव आता है २ । मथुरा बाबू बोले— ठीक है; पर बाबाजीके शरीरपर कपड़ा नहीं है" ॥

जैसे भूखे लड़के माग २ कर खाते हैं; वैसे ही वे भी बहुधा मांग २ कर खाते थे और जैसे एक ही बारमें लड़के अधिक नहीं खा सकते, वैसे ही वे भी अधिक नहीं खा सकते थे ॥

और भी एक बात है। जो लोग अधिक दिनों- तक रामकृष्णके साथ रहे, वे सब जानते हैं कि परम- हंसजी पुष्ट और चङ्गेपनकी अवस्थामें भी पाव कोसभर भी नहीं चल सकते थे । श्रीश्रीजगन्नाथदेवका महा- प्रसाद पाये विना वे भोजन नहीं करते थे और सबसे कहा करते थे कि "ब्रह्मद्रव वारि" अर्थात् गङ्गाजल सब कोई पीया करो। किसीका मन उदास (अप्रफुल्लित) होनेपर वे बताते थे—"तनिक गङ्गाजल पी लो। सब दुःख दूर हो जायगा" । और एक वार्त्ता है कि * किसी वस्तुका भाग जो कोई पहिले ले लेवे अथवा कोई द्रव्य उन्हींके नाम न ल्याया जावे, वा न मोल लिया जावे; उसे वे नहीं

* देवीको जूठा चढ़ाना वर्जित है और जो वस्तु भगवदर्पणके निमित्त नहीं लाई गई है वा मोल नहीं ली गई है; उसे देवीको अर्पण करना पूजाविधिके विरुद्ध है।

लेते थे और न खाते थे। वे कहते थे कि जिस वस्तु-का अंश पहिले कोई निकाल ले तो वह वस्तु जूठी हो जाती है। मैं काली माताको नैवेद्य लगाये विना कुछ नहीं खाता॥

जैसे लड़के नई वस्तु देखनेको बड़े उत्सुक होते हैं और वस्तुके देखने वा पानेपर प्रमोदसे तदेकचित्त हो जाते हैं, उसी प्रकार वे भी नई वस्तु देखनेके निमित्त उत्सुक हो उठते थे। एक वार उनने देखना चाहा कि जहाज़ भक् २ कैसे करती है? यह देखनेके निमित्त उत्कण्ठित हुये। निदान उनको लोग जहाज़में ले गये। उस समय उसके देखनेसे उनके मनकी प्रसन्नताकी सीमा न थी॥

श्रीरामकृष्णका स्त्रीभाव।

कोई साधक कह गया है कि रामकृष्ण आधा स्त्रीभाव आधा पुरुषभाव रखते थे अर्थात् इन दोनो भावोंके मेलसे वे एक बालकवत् लीला कर गये हैं। सत्य २ में भगवान् रामकृष्णके भीतर बाल्य-भाव जैसा प्रबल था, वैसा ही स्त्रीभाव तथा पुरुष-भाव भी मिला था। यह बात भी विस्तृत जीवन-

चरितमें मैं उक्त बातके स्थापनमें विस्तारसे लिखूँगा। यहांपर संक्षेपसे केवल दो एक निदर्शन देता हूं। बहुत छोटी अवस्थामें बालक रामकृष्णके भीतर कन्याका भाव भी देखा गया था॥

स्त्रियोंके समान बड़े हाव भाव और कटाक्षके साथ वे बातें करते थे जिससे पुरुषके घरमें, अधिकतः स्त्रियोंके महलमें भी वे बहुत हिले मिले थे।

एक दिन बालक रामकृष्ण गांवके किसी स्थानमें घूमने गए थे। वहां वसतिके मनुष्य इकट्ठे जुट के नाना बात चीत कर रहे थे। उनके बीच एक मनुष्य शेखीसे कह रहा था कि वसतिके सब किसीके घरका समाचार गांववाले सुनते जानते हैं पर हमारे घरके भीतरका हाल कोई नहीं जानता। बालक रामकृष्ण यह सुन के स्त्रीके समान कपड़ा पहिन के जुलाहिनके भेषमें उसके घरके भीतर घुसे। उन्हें नवागत देख और उनकी मीठी २ बातें सुन के घरकी सब लड़कियां और स्त्रियां देखने चली आईं और उनसे बहुत-सी बातें करने लगीं। इस प्रकार बालक राककृष्ण बड़ी देरलों उनके घरमें बैठ नाना प्रकारकी बात चीत करते रहे। बात करते २ रात अधिक बीती और

उनका पिता ऊँचे स्वरसे उनको पुकारता खोजने लगा। पिताका शब्द सुन उसी अन्तःपुरसे गदाईने चिल्ला के आवाज़ दी। उस शब्दको सुन के स्त्रियां दङ्ग होगईं और कहने लगीं—क्या! यह लड़की नहीं है? लड़का है? हम लोग इसे नहीं चीन्ह सकीं; यह अचरजकी बात भई। वसतिके सारे लोग यह चरित्र सुन के चकित भए॥

बहुतसे लोग जानते हैं कि रामकृष्ण युवा अवस्थामें सखीभावकी लीला करते थे और लोगोंको यह भी ज्ञात है कि सखीभावकी लीला करती वेला वे स्त्रियोंके सदृश गहने पहिनते और केश बनाते थे। कभी २ बड़ी २ देरलों स्त्रियोंके साथ रहते थे। कुछ दिनोंपीछे जब बङ्गालमें स्त्रीशिक्षा और स्वाधीनताका तरङ्ग उठा, उन दिनों लीलारसिक श्रीकृष्णके स्त्रीसवांगका वेश धारण करके रामकृष्ण भगवान्‌ने जान बाज़ारकी रानी रासमणिके दामाद मथुरा बाबूके अन्तःपुरमें वास किया था। मैं समझता हूं, यह बात भी बहुतेरे जानते होंगे कि जब वे स्त्रीके वेशमें मथुरा बाबूके घरके भीतर रहते थे उस समय कभी २ दुर्गादेवीसे और कभी २ काली मातासे वार्तालाप करते

थे। उसे देख के घरकी स्त्रियां सुखी और चकित होतीं थीं। मथुरा बाबूके घरमें दुर्गापूजाके समय परमहंसदेव स्त्रीका भेष धर के देवीके साम्हने शक्तिकी स्तुति गान गाते और चमर तथा चमरपँखा इत्यादि झालते थे। फिर कुछ कालानन्तर भावकी झोँकमें आ के वे स्त्रीभेष छोड़ अपने यथार्थ रूपमें होते थे।

जिन्नने उन्हें बुढ़ापेमें देखा है, वे तब भी स्त्रीभावके घने परिचय उनमें बताते हैं। स्त्री किस प्रकारसे पुरुषको मोहित करती है; यह बात उनने वार २ स्त्री बन के दिखलाई है। एक दिन मेरे (वङ्गभाषामें इस प्रस्तुत ग्रन्थके कर्ताके) साह्मने वे स्त्रीभावका वस्त्र पहिन के जैसे स्त्री पतिको भोजन कराती है, वैसा हाव भाव कर के सकटाक्ष भोजन कराने लगे। क्या आप और कुछ न खायंगे? अरे! हमारे कहनेसे एक सन्देश ले लीजिये वा ज़लेबी ही ले लीजिये, इतना कह के आगेका कपड़ा ढाँकते थे। ऐसी मधुर वाणीसे बोलते थे कि वह बात आजतक हमारे मनके भीतर जागरूक है। भोजन कराते २ वे स्त्रीके वेशमें ही बोले। अमुक ब्राह्मणकी जेठी पतोहूने एक बड़ी बढ़ियाँ सात लरकी माला बनवाई है; वैसी ही एक माला

मेरे लिये भी बन जाय तो अच्छा हो। परमहंसजीका उस दिनवाला अद्भुत स्त्रीभावधारण हम लोगोंके मनमें ऐसा मुद्रित हो गया है कि अब आभूषण इत्यादि बनवानेनिमित्त हमारे घरकी लुगाइयां जब कभी बल बाँधती हैं, तब परमहंसजीके उस दिन स्त्रीभेषके व्यवहार हमें चेत आ जाते हैं। सो लुगाइयोंकी समस्त चेष्टाएं निष्फल होजाती हैं ॥

एक दिन सिमुलिया गली में *सुरेद्रनाथमित्रके घरपर जिसका नम्बर १७ है, परमहंसजी गये थे। परमंहसजी बीच२में इनके यहां आया जाया करतेथे। अबकी वार सुरेन्द्र बाबूने केशव इत्यादि कई जनोंको नेवता दिया था। सुरेन्द्र बाबूने सबके लिये तो बेलाके फूलकी एकलरी माला मोल लाये थे और परमहंसजीके लिये उत्तम बेलाके चुने हुए फूलोंकी दोलरी माला अर्थात् गजरा क्रय कर लाये थे। सांझ होनेपर जब सब लोग इकट्ठे हुए तब सुरेन्द्र बाबूने ज्यौं ही परम-

* ये परमहंसजीके मुख्य भक्त और बड़े दाता, गर्वरहित, अकृपण तथा सीधे स्वभावके मनुष्य थे। परमहंसजी तथा उनके भक्तोंकी सेवाके लिये उनका जन्म था। सुरेन्द्रनाथजीने श्रीरामकृष्णजीका एक सुन्दर Oil painting चित्र जिसमें उनका धर्मभाव प्रकट है, बनाया। हमारी इस पुस्तकके पढ़नेवाले सब लोग इस चित्रको किसी रविवारको सुरेन्द्रनाथजीके घरपर आ के देख जावें ॥

हंसजीके गलेमें माला पहिनाई त्यों ही उनने उसे निकाल कर फेंक दिया। पश्चात् उस दिन धर्मालोचन और कीर्तन करते २ परमहंसजीको राधाके भावकी उद्दीप्ति भई। सो वे अलौकिक प्रकारसे नाचने गाने लगे। इस दशामें सुरेन्द्र बाबूने उनके गलेमें दूसरी माला डाल दी। इस वार परमहंसजी उस मालाकी ओर निहार कर सबके आगे गाने लगे—

भूषण शेष कौन मोहि हे री।
मैं जग चन्द्रहार गर गेरी॥

उस समय जिस२ने उनका यह सवांग देखा होगा उसके मनसे उनके उस गानका भाव न भूला होगा॥

और एक समय होलीके दिन डोलयात्रा देखने वे राधाकृष्णके मन्दिरमें गये। वहां उन्हें राधिकाका भाव आ गया। सो कृष्णके देहमें अबीर लगाते हुए यह गीत गाने लगे। "आवहु फाग खेलिय गिरिधारी-तुमहु उड़ाओ गुलाल मोहिपर हौंहु तोहिपर डारी। देखन चहौँ आज तुम्हरो गुन को जीतै को हारी"। यों गाते २ ऐसे भावसे वे क्रीड़ा करने लगे कि देखने-वालोंपर क्या कहें मोहनीसी पड़ गई॥

श्रीरामकृष्णका पुरुषभाव ॥

---:o:---

पुरुषदेह धारण कर के भगवान् रामकृष्ण अवतरे ही थे । अतः उनके आत्मामें पुरुषभाव था । सब जानते हैं कि वे स्त्रियोंके साथ बहुत बात चीत करना और उनके साथ रहना नहीं पसन्द करते थे । तौ भी मैं यहां केवल यह विज्ञापन करूंगा कि जिस राज्यमें कोई भी पुरुष प्रवेश नहीं पा सकता, उस राज्यमें श्रीरामकृष्णजीने पुरुषरूपसे विहार किया था ॥

मीराबाई नामकी एक धर्मात्मा रानी थी । वह अपने अन्तःपुरमें कृष्णकी मूर्त्ति बनवा के आठो पहर यथासमय नियमानुसार उनकी सेवा किया करती थी । लोग कहते हैं कि वह गानमें बड़ी निपुण थी । अकबर बादशाह तानसेनके साथ वैष्णवका भेष धर के रानीके घर उसका गान सुनने आये थे । रानी उन्हें बादशाह न पहिचान के अन्तःपुरमें लिवा ले गई । सो बादशाह तथा तानसेन दोनो जन भीतर गए । जब रानी भगवन्मूर्तिके सम्मुख गाने लगी तब तानसेन समझ गए कि इस रानीसे गानमें हम कम हैं !

जो कोई वैष्णव हो घरमें सबहीकी विना रोक टोंक पैठारी होना सुन के रानीका पति बड़ा बिगड़ा और रानीपर खड्गहस्त हुआ। रानी कोई उपाय न देख के छिप के वृन्दावन भाग गई। वृन्दावनमें जा के उसने श्रीमद्रूपगोस्वामीका दर्शन पानेनिमित्त उन्हें बुला भेजा। रानीका सन्देश सुन के श्रीमद्रूपगोस्वामी बोलेः—'श्रीवृन्दावनबीच मैं—करौं आइ के वास । स्त्रीसह संभाषण करन अहै न मोहिं सुपास'। रानीने यह वचन सुन उन्हें यह कहला भेजाः—'श्रीवृन्दावन-धाममें सुन्यो न इत दिन आन। पुरुष बसत है कोइ इक विना कृष्ण भगवान'। यह सुन के श्रीमद्रूप-गोस्वामी लजाये और रानीसे भेंट करना स्वीकार किया। सब भगवद्धर्मी जन जानते हैं कि श्रीवृन्दावन-में एक श्रीकृष्णचन्द्र ही पुरुष हैं और शेष सब स्त्री माने गये हैं। वहां बहुधा पुरुष भी स्त्रीके समान भग-वदाराधन करते हैं। भगवान् रामकृष्ण जब श्रीवृन्दावन-में भ्रमण करते थे तब उनके भीतर कभी २ श्रीवृष-भानुदुलारीका भाव और कभी २ श्रीकृष्णका भाव उद्दीप्त होता था। नवद्वीपमें जब स्वामीजी गए थे तब उनके मनमें चैतन्यदेवका भाव उद्दीप्त हुआ था।

इसीसे कहता हूं कि भगवान् रामकृष्णके भीतर साधारण पुरुषका तो क्या महापुरुषका भी भाव बीच२में उमग उठता था। उनके मनमें कभी २ शिवका भाव भी उबल उठता था। मथुरा बाबूने भि एक समय उन्हें शिवरूपमें दूसरे समयोंमें अन्य २ देव और देवीके भेषमें देखा था। अतः कहता हूं कि उनके भीतर महापुरुषका भाव था॥

———:o:———

रामकृष्णकी पागलकीसी स्थिति।

जीवन्मुक्त प्राणी संसारमें बालक, पिशाच और पागलके रूपमें घूमते हैं; यह बात श्रीमद्भागवतमें कही है। भगवान् रामकृष्ण भी ये ही तीनो प्रकारकी लीला इस संसारमें कर गये हैं॥

क्या लड़काई, क्या तरुणाई, क्या बुढ़ाई, तीनों अवस्थाओंमें वे पागल भावमें दिखाई पड़े हैं। बालक गदाई एक तो परम सुन्दर और दूसरे महा मृदुलभाषी थे; परन्तु पढ़ने लिखनेमें यत्नवान् न होनेसे बहुतेरे उन्हें बार २ पागल है २, यों कहा करते थे॥

मध्यावस्था (अधेरपन)में रानी रासमणिकी काली-

बाड़ीमें जिसने उन्हें देखा था उनमेंसे बहुतेरे उन्हें पागल निश्चय कर चुके थे। दक्षिणेश्वरके पास अँड़ियादहमें अब भी कई एक ऐसे संसारी जीव बसे हैं, जो उन्हें निस्सन्देह पागल निश्चय कर बैठे।

भगवान् रामकृष्ण जब गङ्गाके तटपर गिर के माता! २ पुकारते थे; उस समय उनका वह भाव देख के बहुतेरे कहते थे—“ यह बालक बिल्कुल बावला हो गया है” परन्तु सब लोगोंको विशेष कर अँगरेजी पढ़े हुओंको यह जानना चाहिये कि तुच्छ धन मान इत्यादिसे तथा मादक पदार्थके सेवनसे जो पागल हुए, उन पुरुषों और जीवन्मुक्तोंमें आकाश पातालका भेद है। ये दोनो एक नहीं हैं॥

भगवान् रामकृष्णके चरितमें ऐसी २ पागलपनकी अवस्था दिखाई दी है कि यदि दो एक महापुरुष आ के उन्हें न देखते तो २ समझ पड़ता है, उन्हें कोई भी न चीन्ह पाता। बद्ध संसारी जीवोंकी बात तो निराली है; साधु, भक्त भी इस समय ऐसे नहीं मिलते जो उन्हें भली भाँति चीन्ह सकें। महात्मा विजयकृष्ण गोस्वामी कहते हैं—‘मैंने एकसे एक भाव और भिन्न २ मतके साधु सन्तोंको देखा है पर एकत्र सब भावसे

संवलित और सब मतोंमें सिद्ध श्रीरामकृष्ण ही मुझे मिले हैं। आजलों दूसरा कोई नहीं लख पड़ा। ये तो जगत्‌की नई ही सृष्टि जान पड़ते हैं॥

एक समयकी बात है कि परमहंसजीने बाह्य वस्तुओंसे अपने मनको इतना हटा लिया कि व्यापारशून्य हो कर जड़पिण्डवत् ज्ञात होने लगे। इसी समय एक योगी दक्षिणेश्वरकी वाटिकामें आया और उनकी यह अवस्था देख के सोचा कि कहीँ ऐसा न हो—उन्हें जड़ समाधि लग जावे। इस कारणसे उनके मनको देहका ज्ञान करानेके निमित्त उसने रूलसे पीठ और कन्धे पर मारा। कुछ दिनतक उसे उनके पक्षमें नित्य ऐसा करना पड़ा। उससे उन्हें जड़ समाधि तो न लगने पाई पर छ महीनेतक उनकी यह बाह्यव्यापारशून्यता बनी रही॥

छ महीने बीतनेपर धीरे २ जगत्‌के ज्ञानका उद्बोध उन्हें होने लगा। तबसे अर्थात् उक्तविध अवस्था छूटनेसे आरम्भ कर के बाह्य जगत्‌का भान पाने उपरान्तसे वे निरी जगत्‌की भलाई विचारनेमें लगे। यद्यपि यह कहतूति बहुत दिनोंसे फैली है कि सर्व धर्ममत सत्य और ठीक हैं, तथापि अबतक लोग उसका मर्म-

भेद न कर पाते थे। परन्तु परमहंसजीने उसे जाना और जान कर के जगत्‌को जतलाना चाहा कि इस घोर कलिकालमें केवल मौखिक उपदेशसे तत्त्वज्ञान नहीं होता। इस हेतुसे वे क्रमशः प्रत्येक धर्ममतानुगामी हुए और तत्तदनुसार धर्मानुष्ठान कर के जगत्‌को दृढ़तासे दर्शा दिया कि जितने धर्ममत प्रचलित हैं, सबमें वही उसका सत्य स्वरूप झलकता है॥

ऊपर उक्त आशयसे छिपे २ परमहंसजीने भिन्न २ प्रकारकी साधनाएँ कीं पर तौ भी लोग उनका भीतरी भेद न जान के उन्हें पागल २ कहा करते थे। जब अपने भावमें रमे वे दिन २ भर गङ्गातीरपर बैठे बिताते थे और सांझको बालूमें नाक रगड़ते कहते थे कि मा! दिन तो बीता मुझे दर्शन दे! उस समय लोग उनकी हार्दिक भक्तिको समझते तो थे नहीं; सो विना समझे बूझे उन्हें पागल कहा करते थे॥

उनका वैसा कहना ठीक भी था क्योंकि जब वे कपड़ेकी पूंछ लगा हनुमान्‌के समान बन के पेड़पर बैठ के रघुवीर हो! २ ऐसा चिल्लाते थे तब संसारी पुरुष और स्त्रियां उन्हें पागल न कहें तो क्या कहें॥

वे कभी २ अल्लाह २ करते थे। कभी देवीके

मन्दिरमें जा के देवीके पांवपर फल और बेलपत्र न चढ़ा के वहां जिस किसी नौकर चाकर किंवा वस्तु-को देखते उसीकी पूजा करते थे और कभी सख्य-भावमें मग्न हो के कृष्णके विरहमें घबड़ा के पेट दबा के रोते थे और कभी कृष्णको लपटा के कहते थे-भाई कन्हैया ! अब तो भाई ! तुम्हें न छोड़ूंगा ॥

जिन दिनों सब लोग उन्हें पागल बोल कर निश्चय कर चुके कि यह सचमुच पागल है; उन दिनों लोगोंसे छिपे२ भगवान् रामकृष्ण जितने धर्ममत हैं, उन सबकी अपने अनुभवद्वारा सिद्धि साधन करते थे और यही आश्चर्य है कि प्रत्येक धर्ममतका एक सिद्धपुरुष आ के उनके आगे खड़ा होता था। चाहे कैसा भी साधन हो, उसे स्वामी तीन दिनमें सिद्ध कर लेते थे ॥

बुढ़ौतीमें भी उन्हें जिन्होंने देखा है वे भी कई वार देख चुके हैं कि उनकी तब भी पागलकीसी स्थिति नहीं छूटी थी। एक दिन परमहंसजीने सिंह देखना चाहा; सो पं० शिवनाथशास्त्री उन्हें अलीपुरके चिड़ि-याघरमें ले जा के दिखाने कहा और दिन स्थिर किया कि अमुक दिन ले चलेंगे। निदान नियत दिनमें पण्डितजी परमहंसजीको सिंह दिखानेके लिये अपने साथ वहां

ले गये और देखा कि परमहंसजी उन्मत्तावस्थामें कह-ते हैं—माता! आपका वाहन देखना चाहता हूं माता!। चिड़ियाघरमें पहुंचते ही पहिले उनने सिंह देखा, तदनन्तर और २ पशुओंको देखनेके लिये जब उनसे कहा गया तब वे उनसे बोले:—"पशुराजको तो देख लिया अब और क्या देखें" ॥

———:o:———

श्रीरामकृष्णकी पिशाचवत् स्थिति।

इस अवस्थामें कभी २ यह घटना घटित हुई है कि परमहंसजी इतना बाह्यज्ञानशून्य हो जाते थे कि धोती पहिने २ झाड़ा फिर देते थे और उसी अशुचि स्थितिमें मन्दिरमें घुस जाके देवमूर्त्तिको छूते थे। यह देख के मन्दिरके कार्यवाही लोग उनके पिशाच भाव-पर क्रुद्ध होते थे ॥

पूजा करते २ कभी वे ऐसे अद्वैतभावसे भर जाते थे कि उन्हें सेव्यसेवकभाव भूल जाता था और अपने आपको तथा सब जीवोंको देवी ही कर के जानते थे। किसी समयकी बात है कि उनके घर एक बिल्ली म्याउँ २ करती आई। सो उस(बिल्ली)को ले के वे देवी-

को अर्पित नैवेद्य खिलाते २ बोले—"माता ! जो तू ही बिल्लीके रूपमें म्याउँ २ करती है तो ले खा, इस बिल्लीको खा" ॥

जब वे विष्ठा ले के पूजा करते थे तब भी उनका पिशाचभाव स्पष्ट प्रकट दृष्ट पड़ा था और जब वे गुह ले के अपनी जीभमें छुआने लगे तब तो बहुतेरोंने उन्हें साक्षात् पिशाच समझ कर घिन की ॥

———:o:———

रामकृष्ण और कनक ।

भगवान् रामकृष्णका मुख्य उपदेश यह था— "कामिनी और कनक छोड़े विना ईश्वरकी प्राप्ति अनहोनी है । इस बातको जीवोंके मनमें ध्रुव निश्चय करानेके लिये वे एक हाथमें रुपया और दूसरेमें मिट्टी ले के कहते थे कि रुपया मिट्टी है और मिट्टी रुपया है । यों कहते २ अन्तमें उनके भीतर यह भाव आ गया कि वे धातुमात्रको कदापि नहीं छूते थे । यदि किसी धातुका कभी स्पर्श हो जाता तो उनका हाथ आप ही आप टेढ़ासा हो जाता था ॥

एक दिन उन्हें उद्यानमें घूमते २ एक स्थानपर एक पक्का आमका फल मिला। उसे पड़ा देख वे उठा लाना चाहते थे पर ज्यों ही उसे उठाने गए त्यों ही उनका हाथ टेढ़ासा होगया जिससे वे उसे उठा न सके ॥

शम्भुचन्द्र मल्लिकनाम एक जन परमहंसजीके परमभक्त थे । वे परमहंसजीको बहुधा अपनी वाटिकामें ले जा के इसाइयोंकी बाइबिल पढ़ के सुनाते थे। एक दिन उक्त वाटिकामें परमहंसजीका पेट चला। उसकी निवृत्तिके लिये शम्भु बाबूने उन्हें अफीम खिला दी। परमहंसजीने आधी अफीम खा के आधी धरतीपर धर दी। लौटतीवेला उनका मन भया कि उस टुकड़ेको साथ लेते चलें पर ज्यों ही उसको वे लेने लगे त्यों उनका हाथ टेढ़ासा हो गया । सो उस अफीमके टुकड़ेको वे नहीं लाये ॥

मथुरा बाबूने एक वार परमहंसजीको एक अच्छा रेशमी कपड़ा ला दिया। उस कपड़ेको पहिन के वे ध्यान करने लगे । ध्यान कर चुकनेपर अपने इष्टदेवको दण्डवत् करने गये । उसी सयय उनके मनमें यह भाव आया कि दण्डवत् करनेसे रेशमी कपड़ेमें धूल लगेगी; सो तुरन्त उनने उस कपड़ेको खोल के फेंक दिया और अपने इष्टदेवको दण्डवत् (प्रणाम) किया॥

एक मित्र कहते हैं कि मैं एक दिन परमहंसजी-के पास गया और देखा कि वे एक महँगे शरीरधार्य कपड़ेपर थू २ कर के थूक रहे और वार २ धूलिमें उसे घसीट रहे हैं और कहते हैं—"तुझे पहिले बड़ा घमण्ड रहा। अब देख, तू कैसा विवश है" ॥

एक धनी जैन मारवाड़ीका लक्ष्मीपटनामक पोता एक वार परमहंसजीसे आ के बोला—मैं देखताहूं कि आपको खाने पहिननेका क्लेश है। अतः आपके नामपर कई सहस्र रुपये लिखनेके लिये मैं कम्पनीका काग़ज़ लाया हूं कि इसके ब्याजसे आपका निर्वाह हो। आपको ये रुपये लेना होगा। परमहंसजीने रुपये लेना नहीं स्वीकार किया। तौ भी वह वार २ लेनेके लिये विनति करता रहा। अन्तमें उच्च स्वरसे स्वामी क्रन्दन करने लगे और बोले-माता! तू ऐसे लोगोंको क्यों यहां लाती है? जो आपके पास बैठ मुझे यहांसे हटाना अर्थात् आपसे मुझमें भेद भाव पहुँचाना चाहते हैं। वे मेरे पूरे वैरी हैं। यह कहते २ उनकी समाधि लगी; उससे जागनेपर माड़वारीने उन्हें अप्रसन्न जान उनसे क्षमा मांगी और उनने अपनी स्वाभाविक मिष्ट-भाषितासे मिष्ट भाषण कर उसे धीरज दिया।

मथुरा बाबूने भी परमहंसजीके नाम पचास सहस्र रुपये कम्पनीके काग़ज़पर लिख दिये थे पर परमहंसजीने उन रुपयोंको किसी भांतिसे भी नहीं लिया। मथुरा बाबूने बहुत समझाया और कहा—इनके लेनेमें दोष क्या है ? आपको कुछ भी न करना पड़ेगा। केवल आपके पास काग़ज़ धरा रहेगा और उसका सूद मैं आप ला दिया करूंगा। इसके लिये आपको कुछ भी न करना पड़ेगा। परमहंसजीने कहा-सत्य है। मुझे कुछ न करना पड़ेगा पर रुपये लेनेसे मेरे मनमें एक दाग लगेगा कि ये मेरे रुपये हैं।

परमहंसदेव जब मथुरा बाबूके घर जा के भजन कीर्तन सुनने बैठते थे, उस समय मथुरा बाबू उनके हाथसे पियाला दान करवाते थे। कोषाध्यक्ष सरकार बाबू आ के पूछता था—"कितने रुपये लाये जायँ ?" मथुरा बाबू कहते थे-'ऐं, कितने रुपये लाये जायँ? अच्छा! एक तोड़ा भर के रुपये लाओ'। यह सुन के सरकार बाबू एक सहस्र रुपयोंका तोड़ा ला देता था। मथुरा बाबू पचीस२ रुपये गिन२ के परमहंसके पासमें पृथक्२ पङ्क्तिबद्ध धरते थे। प्याला दान करनेके समय परमहंसदेव उन रुपयोंको अपने करपृष्ठसे एक२ वारमें

पाञ्च, सात वा दश थोक कर के उठा के प्याला दान करते थे।

जब मथुरा बाबू परमहंसजीको साथ ले तीर्थयात्रा करने गये तब उस (तीर्थयात्रा)में उनके अस्सी सहस्र रुपये व्यय भये। इसका कारण यह था कि जिसे परमहंसजी जो देने कहते, उसे मथुरा बाबू वही देते थे और दान दिलानेमें इधर परमहंसजी कातर न होते थे। परमहंसजीकी ही आज्ञासे मथुरा बाबूने दक्षिणेश्वरमें कालीबाड़ीके आगे नाट्यमन्दिरमें धान्यमेरुनाम स्थान और अपने पैतृक गुरुद्वाराके बनवानेमें बड़ा धन लगाया।

---:o:---

रामकृष्ण और कामिनी।

भगवान् रामकृष्ण स्त्रीमात्रको माताकी दृष्टिसे देखते थे। यही कारण था कि उनने निज विवाहिता स्त्रीका सहवास कभी न किया। उनके भाञ्जे हृदय बाबूने तरुण रामकृष्णको स्त्रीके पास न जाता देख के बहुत समझाया पर समझानेसे क्या होता है? सब बातें व्यर्थ भईं; कुछ फल न निकला। अन्तमें हृदयने एक बाकरनीको साध बुध के उससे एक युवति स्त्री बुलवा के

उसे रात्रिमें परमहंसजीके शयनगृहमें भेज दिया पर उससे भी कुछ इष्टसिद्धि न भई । लाभके पलटे हृदय बाबूने उस वार परमहंससे भारी धिक्कार पाया ॥

तदनन्तर मथुरा बाबूने भी उनका विवाह देखना चाहा । सो एक दिन उनने मछलीबाज़ारमें किसी रूपवती वेश्याके साथ परामर्श कर के अपने घरमें सुन्दरी २ वेश्याओंको अच्छे २ पहिनावे पहिना उढ़ा के बैठा रक्खा था और परमहंसजीको उनके बीचमें ले जा के छोड़ दिया। परमहंसजी उनके बीचमें जा के—'आनन्दमयी माता ! २' यों कह २ के उनको प्रणाम करने लगे और उनके बीचमें बैठ के फिर 'आनन्दमयी माता ! २' ऐसी धुनि लगा दी और समाधिमें डूब गये । वेश्याएं परमहंसजीके भावको देख डर गईं और कोई उन्हें पंखा झालने, कोई अपनेको अपराधिनी मान के क्षमा मांगने लगी । निदान मथुरा बाबू लजा गये और परमहंसजीमें उनकी भक्ति और भी बढ़ गई ॥

एक वार रानी रासमणिने भी उनके पास एक वेश्या भेज दी थी और उस वार भी वे उस वेश्याको देख कर माता ! २ कहते समाधिमग्न हो गये । कोक-शास्त्रमें विशेष पटु एक सुन्दरी वैष्णवीने कलकत्तेमें

किसी मनुष्यसे सुना कि दक्षिणेश्वरमें रामकृष्णनाम परमहंस हैं। उनको केशवचन्द्रसेन ऐसे २ लोग आदर देते हैं। वह वैष्णवी अनेक तीर्थ घूमी थी और उसने अनेक साधु, महन्थ, मठ और तपस्वी देखे थे। वह जहां जाती थी वहांपर थोड़े ही दिनोंमें अपनी सुन्दरतासे सब धन ले के आप धनाध्यक्ष बन जाती थी। वही वैष्णवी अपनी सुन्दरता और कोकशास्त्रके ज्ञानके गर्वसे परमहंसजीके निकट आई। उस समय परमहंसजीके पास और २ लोग भी बैठे थे। वैष्णवी परमहंसजीको प्रणाम कर एक ओर खड़ी भई। उसी समय परमहंसजीको झाड़ा लगा। सो वे झाड़ा फिरने चले और यह चतुर स्त्री गडुवा ले के सेवामें पीछे २ चली। परमहंसजी आगे २ चले जाते थे और यह पीछे २ चली जाती थी। परमहंसजी वाटिकाकी उत्तर ओर आमके पेड़के नीचे एक झापसमें झाड़ा फिरने लगे और वह वैष्णवी थोड़े दूरपर गडुवा लिये खड़ी थी। परमहंसजी झाड़ा फिरते २ दो ढेलोंको ले के सूधे शिशुके समान झापसमें ही खेलने लगे। उनका वैसा लड़केकासा स्वभाव देख के वैष्णवी रो के बोली—"मैंने अनेक साधु देखे पर ठीक तुम्हारे ही ऐसा एक भी नहीं देखा। हे भगवन्! मेरे अपराधको क्षमा करिये; मैं बड़ी अपराधिनी हूं"॥

एक वार परमहंसजीको वैष्णवचरण काछीबागमें नवजवान रसियोंके अड्डेपर ले गये। परमहंसदेव वहाँकी स्त्रियोंका कुत्सितभाव देख के वैष्णवचरणको बहुत झिझकारा। तामसी प्रकृतिका वर्णन करते २ परमहंस बहुतोंसे उस दिनका घटित्त वहाँपरकी एक स्त्रीका बर्ताव बहुधा सुनाया करते थे कि वह स्त्री गलफड़ेमें पान भर के परमहंसजीके देहसे अपना देह घिस के बोली कि भाई! पान और सुर्ती विना मैं नहीं रह सकती॥

यह बात जगत्‌उजागर है कि जानबाज़ारमें जब मथुरा बाबूके घरपर परमहंसजी रहते थे, उस समय मथुरा बाबू जिस बिछौनेपर सस्त्रीक शयन करते थे उस बिछौनेके पास ही एक दूसरे बिछौनेपर परमहंसजी बालकके समान सोते थे। इस बातको मथुरा बाबू भली भांतिसे जानते थे कि रामकृष्णके मनमें विकारका नाम भी न था।

---:o:---

दीन रामकृष्ण।

सैकड़ों सहस्रों मनुष्योंने देखा है कि भगवान् रामकृष्णको कोई प्रणाम करने जाता था, तो वे सबको प्रणाम आगे ही कर बैठते थे।

परमहंसजीने सबको स्वयम् दिखला दिया कि अहङ्कार कैसे दूर होता है और कैसे सबसे नम्र रहना होता है। माता देवीके प्रति रो२ कर वे यह प्रार्थना किया करते थे—'माता! मेरा अहङ्कार दूर कर दे री माता!' ऐसी प्रार्थना कर के वे कहते थे कि 'मैं नम्रोंसे नम्र और दीनोंसे दीन होजाऊं'। देवीसे वे यह भी प्रार्थना करते थे कि 'माता! मैं न कुछ जानता हूं, न आदर चाहता हूँ, न मान चाहता हूँ, मेरा अहङ्कार हटा के मुझे दीनसे भी दीन और हीनसे भी हीन बना दे'।

एक दिन एक दीन पतला दुबला किसान पाँवमें धूल लपेटे एक जोड़ा लतड़ी पहिने उसे फट् २ चटकाता रामकृष्णजीसे आ कर यों पुकार के बोला—"क्या हो रामकृष्ण!"। यों पुकार के वह उनकी गद्दीपर आ के बैठ गया। तदनन्तर श्रीरामकृष्णके शरीरपर हाथ रख के बोला—'एक चिलम तम्बाकू पिलाओ भैया!'। परमहंसजी उसी समय चटपट चिलम चढ़ाने गए। उनके पासके भक्त लोगोंने उसी समय उनके हाथसे चिलम और तम्बाकू ले के चिलमपर तम्बाकू भर दिया। वह मनुष्य चुपचाप तम्बाकू पी के थोड़ी देरमें 'भाई! मैं राम हूं' ऐसा कह कर के वहांसे चला गया। उसके चले जानेपर सब

लोग परमहंसजीसे कहने लगे—'आप तम्बाकू भरने क्यों गये ? यदि आप हम लोगोंसे कहते तो तम्बाकू भर दिया जाता'। यह सन परमहंसजी बोले—'भर दिया तो क्या ? उसमें हानि क्या है' ?॥

एक दिन कृष्णनगरके किसी भले मानुषके घर परमहंसजी गये थे। वहां उस समय दीनबन्धु न्यायरत्न भी उसी मनुष्यके घर उससे भेंट करने आये थे। ये न्यायशास्त्रके बड़े प्रसिद्ध पण्डित थे। परमहंसजीने उन न्यायवेत्ताजीको देखते ही प्रणाम किया पर नैयायिकजीने उन्हें प्रणाम नहीं किया और बोले—'आप मेरे प्रणामके योग्य हैं क्या ?'। यह सुन के परमहंसजी बोले—'मैं दासानुदास हूं। सभी हमारे मान्य हैं'। पण्डितजी बोले—'मैं जितना पूछता हूं, उसका उत्तर दीजिये—आप मेरे प्रणामके योग्य हैं कि नहीं ?' परमहंसजी विनयपूर्वक बोले—'मैं संसारभरमें सबसे नीच हूं। सबके सेवकका भी सेवक हूं। सब मेरे मान्य हैं'। तब पण्डितजी बोले—'आपने मेरी बात नहीं समझी। आपके देहमें जनेऊ नहीं है, यदि आप संन्यासी हैं तो मैं आपको हाथ जोड़ूं। अतः पूछता हूं कि आप संन्यासी हैं ?' अहङ्कारशून्य रामकृष्णने अपने मुखसे न कहा कि मैं

संन्यासी हूं । बहुत पूछनेपर तब कहा कि 'हाँ मैं संन्यासी हूं' ॥

परमहंस एक दिन वाटिकामें घूमते थे। उसी समय कलकत्तेका एक प्रसिद्ध डाक्टर उनके पास गया और उन्हें माली जान के आज्ञा दी कि जूहीके फूल तो तोड़ लाओ । परमहंसजीने उसी समय उसकी आज्ञा मान बहुतसे फूल ला दिये । रोगावस्थामें उनकी औषधि करते उसी डाक्टरने आश्चर्यसे भर के कहा—'मैंने यह क्या अनर्थ किया ? अहो ! मैंने यह क्या किया ? इन्हींको तो मैंने फूल तोड़नेको कहा था' ॥

जब परमहंस विष्ठा और चन्दनको समान समझते थे उस समय किसीने मसखरीमें उनसे कहा कि "अपना गुह कौन नहीं छू सकता ?' यह सुन परमहंसजीने मनमें विचारा—'यह मनुष्य सत्य तो कहता है ।' सो उनके मनमें यह भाव आया अर्थात् एक ऐसी अद्भुत वृत्ति उदय हुई कि वे उसी समय जहाँ वाटिकामें सबका गुह मूत पड़ा था, वहांसे गुह उठा के मिट्टीके समान उसका बर्ताव करने लगे ॥

———:o:———

दयालु रामकृष्ण ।

यद्यपि रामकृष्ण मर्त्यलोकके मनुष्य नहीं थे तो

भी इस संसारमें हम लोगोंके सामने लीलाएँ कर गये। इसका कारण निष्केवल उनकी दया है २, दया ही है। यदि रामकृष्ण परमेश्वर थे तो अन्य जीवोंके मासन कड़ी २ साधनाएँ क्यों करने गये ? दयासे, दयासे; दयाहीके कारणसे।

किसी मूर्खने उन्हें भली भांति, समझ के भी कहा कि 'आप अन्यत्र जहां चाहें वहां चले जा सकते हैं तो फिर यहांपर केवटका भात क्यों खाते हैं, ? साधारण बिछौनेपर क्यों सोते हैं ? यह सुन परमहंसजी उठ के पञ्चवटीके नीचे चले गये। वहां उनके मनमें आया—' यह साला कैसा नीचबुद्धि है। हम सागूदाना भी खा के लोगोंकी भलाई करें तो अच्छा है, हमें लाखों क्लेश मिलें, वह भी अच्छा है। हे माता ! यदि सागूदाना खा के जी कर मैं लोगोंका भला कर सकूँ तो करूँगा'।

करुणावतार श्रीरामकृष्ण दुःखियोंका क्लेश नहीं देख सकते थे और दीन दुखिया जो ही उनके पास जाता उसका दुःख वे अवश्य दूर करते थे। इस बातका साक्ष्य देनेवाले सैकड़ों मनुष्य अबतक जीवित हैं।

एक वार एक दुःखिया स्त्री चार दिन लगातार

कालीबाड़ीमें भोजन करने आई थी। एक दिन वहांके द्वारपालने उस दरिद्राको मार दिया। यह बात सुन के परमहंसजी रोने लगे और बोले—'माई! यह तेरी बुद्धिमानी है कि दो दानेके लिये उस दुःखिनीपर मार पड़ी'।

एक दिन परमहंसजी मथुरा बाबूके साथ नावपर चढ़ गङ्गामें घूमते २ कृष्णनगरके अन्तर्गत रानाघाटके पास कलाईघाटानामका दरिद्रोंसे बसा एक गाँव देखा। उस गाँवके किसी मनुष्यके भी पास पहिननेको घरा कपड़ा न था। सब मैला कुचैला चिथड़ा लपेटे थे। उनकी देहदशा देखनेसे ऐसा जान पड़ता था कि उन्हें अन्न कभी मिलता था और कभी नहीं। दीनदयालु रामकृष्ण उनकी दशा देख रो पड़े और बोले—'माई! तेरे संसारमें ऐसे भी दुःखी हैं? माता! तैं तो दयामयी है। तुझ२में इतना भेदभाव क्यों? कोई तो तेरी दयासे असीम ऐश्वर्यवान् हो के रहे और कोई पेटभरके दाने भी प्रतिदिन खानेको न पावे!' तदनन्तर उनने मथुरा बाबूसे उत्तम भोजन पकवा कर सबको खिलाने और प्रत्येकको एक २ नया कपड़ा देने कहा। सो मथुरा बाबूने उन सभोंको एक सप्ताहपर्यन्त भोजन कराया और एक २ नया कपड़ा भी प्रत्येकको दिया।

श्रीरामकृष्णकी दयाकी कथा कहता एक दीन साधक बोलता है—मैं परमहंसके समीप पहिले जिस दिन गया उस दिन उनके पाससे चलतीवेला उनका चरण-रज लेना चाहा पर उनेने अपना श्रीचरणकमल हटा लिया। जब उनेने पावँ हटा लिया, तब मैंने अपनेको पापी समझा कि "हाय ! मैं नारकी जीव किस साहस-से उनका श्रीचरणकमल छूने गया था" ?। उस दिनसे वह साधक जब परमहंसजीके पास जाता था तब दूरहीसे प्रणाम करता था और चरणधूलि ले के दूरहीपर बैठता था । पास जानेका साहस कदापि नहीं करता था । ऐसे ही कुछ दिन बीतनेपर एक दिन परम-हंसजीके पास वह साधक गया और परमहंसजीने घर-का द्वार बन्द करेनको उससे कहा । उस समय वहां कोई न था । ज्यों ही वह साधक द्वार बन्द कर के परम-हंसजीके पास एकान्तमें बैठा, त्यों ही एकाएक परम-हंसजीकी पागलकीसी अवस्था हुई । उनकी आंखें लाल हो गई और एक प्रकारकी अनजानी बोलीमें चिल्लाते २ वे घरके इस कोनसे उस कोने, और उस कोनेसे इस कोनेतक विचरण करने लगे। यह देख के साधक डर गया । उस समय परमहंस जीके पावमें फुन्सी बड़ा

तनाव किये थी। जब वह साधक डर गया, तब कृपालु रामकृष्णने पागलपना छोड़ बालभाव धारण कर के फुन्सीसे पावंके तननेसे पीड़ाविकल हो बोले—'ओह ! पावं बड़ा तना है। तुम तनिक इसे सुहरा दो'। इतना कह के साधकके पास पावं बढ़ा दिया। उस वाञ्छित श्रीचरणकमलको छू के रोमाञ्चित हो साधकने पावंको अपने माथेपर रख लिया पर जैसे ही उसने अपने माथेपर उनका पांव रक्खा त्यों ही परमहंसजी बलपूर्वक अपना पावं खींच कर फिर उन्मत्तावस्थामें हो पड़े और इस वार पावंके तनावसे और भी विकल हो बोले—'अरे ! बड़ी पीड़ा होती है। तनिक सुहरा तो दे'। तब साधक तनिक बल पा के और भी भक्तिपूर्वक ज्यों श्रीचरणसरोजको प्रणाम करने लगा त्यों ही फिर उनने बड़े बलसे पावँ खींच के अपने उन्मादके लक्षणको और बढा दिया। ऐसे कई वार परमहंसजीने उससे पावँ सुहराने कहा और वह वार २ श्रीचरणकमलको प्रणाम ही करता था और वे उसी समय पावँ खींच लेते थे। इसी प्रकार उनने छिपे २ उसके ऊपर कई वार दया की। इसीसे कहता हूं कि ऐसी दया तो न सुनी है, न देखी है।

परमहंसजी किसी नये आये हुए जनकी प्रशंसा करते थे; उसे सुन के कृष्णनगरनिवासी एक पुराने भक्त-के मनमें यह असूया उदय हुई कि नये आये हुये जनकी तो स्वामी इतनी प्रशंसा करते हैं और हम लोगों-की कभी नहीं करते। क्या हम लोग भक्त नहीं हैं। फलतः इसी असूयासे वह भक्त परमहंसजीके पास नहीं जाता था। परमहंसजी भी मित्रोंसे उसका सन्देश पूछ लिया करते थे—'वह कैसे है? आता क्यों नहीं? उसे एक वार समझा बुझा के यहां लाओ' इत्यादि कह के उस भक्तको बुलवाते थे तो भी वह नहीं आता था। कुछ काल बीते एक दिन उक्त भक्त तड़के गङ्गामें स्नान करता था और उसी अवसरमें एक नाव घाटपर आ के लगी। उस नावमें उस भक्तने पहिले अपने चिन्हार एक मित्रको और तदनन्तर परमहंसजीको देख आश्चर्य किया। परमहंसजी उससे भेंट कर बोले—'दक्षिणेश्वरमें आइयो'। उनकी अथाह दया देख वह भक्त बडा मोहित और विनीत हो गया।

कलकत्तेसे जो लोग परमहंसजीको देखने जाते थे वे कैसे लौट के जायँगे; इस बातकी चिन्ता दयालु परमहंस पहिलेहीसे करते थे और जिन लोगोंको जानते

रहते कि वे वराहनगरसे गाड़ीपर जायँगे; सो जानेका समय होते ही उन्हें जाने कहते थे कि 'इसी समय जाओ; नहीं तो गाड़ी न मिलेगी'। और जो लोग पैदल चल कर वराहनगरतक नहीं जा सकते थे, उनके लिये स्वामी स्वयम् गङ्गाके तटपर जा के नावकी खोजमें लगते थे। परमहंसजी जिन असमर्थ दरिद्र मनुष्योंको जानते थे कि ये भक्तिके कारण पैदल चल के जावेंगे, वे उनको उस दिन वहीं रखते थे। किसी२को गाड़ीभाड़ा दिलाते थे। न तु वा यदि कोई धनवान् जन नाव वा गाड़ी भाड़ा करता था तो उसके लौटतेसमय उसके साथ नाव वा गाड़ीपर निर्धन भक्तोंको श्रीरामकृष्णजी चढ़ा देते थे।

एक समयकी बात है कि कोल्हूटोलेसे पढ़े लिखे लोगोंका एक दल गङ्गामें नावपर चढ़ा रातहीको कीर्तन करता हुआ परमहंसजीके पास आता था। कीर्तन अत्युत्तम होता था। उन जनोंने अपने मनमें विचारा कि उत्तरपाड़ातक कीर्तन करते २ चलें। पीछे परमहंसजीके समीप चलेंगे। दक्षिणेश्वरकी कालीबाड़ीके साम्हनेसे जाती वह नाव गङ्गाकी मझधारमें थी। उस दलके कुछ लोगोंने दणिश्वेरकी ओर मुख कर के देखा तो दिखाई दिया कि कोई मनुष्य हाथके सङ्केतसे

हम लोगोंको बुलाता है पर तो भी उन लोगोंने तनिक देरमें लौट आवेंगे, इस विचारसे उधर कुछ ध्यान न दिया पर अन्तमें जब वे उत्तरपाड़ा हो के कालीबाडीमें पहुंचे तब सुना कि केशव बाबूने गाड़ी भेज दी थी। सो वे अभी ही कलकत्तेको गए हैं। तब उन लोगोंने जाना कि दयासागर परमहंसजी ही उन्हें खड़े हो के दया कर के बुलाते थे। सचमुच परमहंसजी अति दयालु थे। निदान उस दिन भेंट न होनेका उन लोगोंके मनमें भारी पछतावा हुआ।

एक निष्ठावान् हिन्दु बहुधा परमहंसजीके पास आया जाया करता था। जिस दिन वह आता, उस दिन दोपहरको वह भोजन न करता था किन्तु सांझको घरपर जा के भोजन बना कर पाता था। परमहंसजी बीचमें उसे खानेको कह देते थे पर वह भोजन नहीं करता था। ऐसे ही बहुत दिन बीते। अन्तमें परमहंसजी जब अपने स्वरूपको प्राप्त होनेके निकट आये, उसके थोड़े दिन पहिले एकादशीके दिन व्रती, वह हिन्दु भक्तिके साथ परमहंसजीके दर्शनको आया। उस दिन श्रीरामकृष्णजीने उसे बड़े आग्रहसे भोजन करनेको कहा। भक्त बड़ी दुविधामें पड़ा कि यदि भोजन

करूँ तो एकादशीव्रत भङ्ग होगा और यदि भोजन न करूँ तो परमहंसके आग्रहपर उपेक्षा होती है; यह विचार के वह कुछ भी न बोल कर चुप हो रहा। परमहंसजी-ने प्रत्येक जनसे कह दिया कि आज उत्तमोत्तम अमुक २ व्यञ्जन बना के इसे खिलाओ। सो व्यञ्जन रींधा जा के ठीक समयपर प्रस्तुत भया। लोग उस भक्तको भोजन करने बुलाने आये। भक्तको न सूझा कि क्या करूँ। परमहंसजीने लोगों से पूछा—सब प्रस्तुत है? वे लोग बोले—हां। तब परमहंसजी बोले—'ले जाओ। इन्हें भो-जन कराओ'। वह भक्त नहीं उठता था। यह देख के पर-महंसजीने कहा—'जाओ भोजन कर आओ'। अन्तमें परमहंसजी उससे इस प्रकार बोले कि वह भक्त उनकी बातकी उपेक्षा न कर सका और उठ के वहांसे चला। सब कोई भोजन करनेके स्थानमें उसे ले गये। वह भक्त उन ले जानेवालोंकी बात टाल न सका। सो उनके साथ गया। सब कोई उसे आसनपर बैठा के बोले, खाओ २, पर वह किसी भांति नहीं खाता था। भां-ति२से बोल कर लोगोंने उसे खिलाना चाहा पर वह न कुछ बोलता था, न भोजन करता था। निदान उन सभोंने हार मान के परमहंसजीके पास जा के कहा कि

'न तो वह भोजन करता है और न कुछ कहता है; चुपचाप बैठा है'। परमहंसजी बोले—'व्यञ्जनपकवानवाली थाली यहां तो ले आओ'। निदान थाली वहां लाई गई। परमहंसजी उस थालीमेंसे कई एक व्यञ्जन और पकवान ले कर आप खा के बोले—'अब ले जाओ। उसे खिलाओ'। भक्त परमहंसजीकी प्रसादी जिसके पानेकी इच्छा उसे बहुत दिनोंसे थी पा के सुखसे भोजन करने लगा॥

———:o:———

प्रेममय रामकृष्ण।

भगवान् रामकृष्ण जीवोंपर जैसा प्रेम करते थे वैसे प्रेमका दृष्टान्त और कहीं नहीं देखनेमें आता है। सहस्रों मनुष्य उनके दर्शनको जाते थे पर कैसे आश्चर्यकी बात है कि उनके वर्त्तावपर सब ही मनमें विचारते और कहते थे कि परमहंसजीके हम परम प्रिय हैं॥

एक ब्रह्मसमाजी मित्र आजकल बिलख २ के कहा करते हैं कि 'हाय! मैं कैसा अभागा हूँ कि एक वार भी परमहंसजीका दर्शन करने न जा सका'। एक

दिन कलकत्तेके हाटखोलावाले बनियांटोलेके अधर बाबू*के यहां परमहंसजी गये थे। मैं (बङ्गालीमें ग्रन्थकर्त्ता) उनकी भेंटके लिये वहां गया था। मुझसे परमहंसजीसे कुछ भेंट थी पर वे प्रेमके कारण चलती-वेला मुझसे बोले—'क्यों जी तुम तो हमारे यहां और कभी नहीं आते'। जिस समय परमहंसजी यह बात कह रहे थे, उस समय सत्य २ उनकी आंखोंसे अश्रुजल ढल रहा था॥

एक दिन परमहंसजीके पास मैं गया और देखा; एक नव युवा बैठ के क्षणिकवादकी चर्चा कर रहा है। थोड़ी देरमें वह उठ के पेशाब करने बाहिर गया। उस समय परमहंसजी हम लोगोंसे बोले—'जानते हो। यह कौन है? यह न परमेश्वरको माने, न देवता जाने, साधु संन्यासियोंको चोर जुवारी कहता है, और हमको भी दाम्भिक समझता है'। वे यों कह रहे थे, उसी समय वह युवा घरमें फिर आया। परमहंसजी बड़े आदरसे हँसते २ फिर उससे बहुतसी बातें करने लगे और तत्पश्चात् जब वह युवा अपने घर जाने लगा तब आग्रहसे बार २ उससे वे बोले—

* ये अधरचन्द्रसेन डेपुटी माजिस्ट्रेट और डेपुटी केलक्टर तथा परमहंसजीके भक्तोंमें एक थे॥

'एक दिन और आना। किसी दिन फिर एक वार यहाँ आना'। हम लोग उनका मानवातीत प्रेम देख कुछ नहीं कह सके ॥

परमहंसजी प्रथम भेंटके दिन दो ही घड़ी बात कर के मनुष्यको अपने प्यारसे ऐसा वशीभूत कर लेते थे कि उनका भारी शत्रु भी हो तो भी वह उनका प्रेमभाव देख के चकित हो जाता था। विदा ले के चलतीवेला जब वे महामधुर वाणीसे कहते थे—'एक वार और आना २; तब कौन ऐसा होगा, जो उनके प्रेम-भावपर न्यौछावर न होवे ॥

भगवान् रामकृष्ण जैसे प्रेमसे लड़कोंको एक ओर बैठाते थे, वैसे ही दूसरी ओर नशेबाज, ज़िद्दी, कामी और अन्य प्रकारके पापियोंको भी प्रेमसे बैठाते थे। यद्यपि लड़कों और बूढ़ोंको वे समान प्यार करते थे तथापि लोग सत्य २ कहते हैं कि उनका बालकोंमें प्रेम अधिक था ॥

साधुके पास ख़ाली हाथ न जाना चाहिये। यदि और कुछ न हो तो एक हरीतकी ही ले के जाना उचित है। यह पुरानी गाथा इस समयके पठित युवकगण नहीं जानते; अतः परमहंसजीके पास कोरे हाथ

जाते थे परन्तु परमहंसजी बहुत दिनोंसे लेना छोड़ बैठे थे। अतः किसीसे कुछ नहीं चाहते थे और न किसीसे कुछ मांगते थे। स्पष्टाक्षरसे किसीको यह शिक्षा भी न देते थे कि खाली हाथ साधुसे भेंट करने जाना अनुचित है, परन्तु जिसे वे जानते थे आर बहुत दिनोंसे भेंट रख के अपना कर लिये थ; उससे छिपे २ कहते थ कि 'कल हमारे निमित्त एक पैसेका कुछ लेते तो आना' और जो कोई उनके पास जाता था, विना खाये नहीं लौटने पाता था। यदि और कुछ न रहे तो एक डला मिश्री अवश्य खिला देते थे* ॥

उनके भक्त लोग उनके लिये उत्तम २ पदार्थ भेंट ले जाते थे और वे सबको आदरसे ग्रहण कर के लोगोंको खिला देते थे। जैसे माता मिठाई मिलनेसे अपने लड़केके निमित्त उठा रखती है; वैसे ही स्वामीजी भी उत्तम मध्यम वस्तु पा के भक्तोंके निमित्त उठा के

*हम लोग बड़ी नम्रतासे विनति और प्रार्थना करते हैं कि परमहंसजीका जीवन-चरित पढ़नेवाला प्रत्येक जन परमहंसजीके जन्मोत्सवकी बधाईमें सहकारी होवे, दान पुण्य करें, और जैसे परमहंसजी विना खिलाए किसीको भी नहीं जाने देते थे, उसी प्रकार उन्हें अब भी जीवित जान के आये गयोंको कुछ खिलावें। इनके जन्म-दिन खाली मुंह कोई न लौटने पावे। जानना चाहिये कि फाल्गुण शुक्ल द्वितीयाको इनका जन्म हुआ है। उसी दिनके पूर्व गत वा आगामी आदित्यवारको दक्षिणेश्वरकी कालीबाड़ीमें यह महोत्सव बड़े आनन्दसे होता है।

सूचना—पहिले यह उत्सव दक्षिणेश्वरमें होता था पर अब ज़िलभ हवड़ेके बेलूड़ ग्रामके मठमें होता है।

रखते थे और दूसरे दिन उन्हें चतुराईसे बुला भेज के खिला देते थे ॥

एक दिन एक मित्रने परमहंसजीको जा के देखा कि उनकी आंखें डबडबाई हैं, और वे रोते हैं। मित्रने कारण न जान के रोनेका कारण पूछा । वे बोले—'अमुक जनसे हमें कई एक बातें कहनी थीं। वह कई दिनसे नहीं आता; मनुष्यसे बुलवा भेजा, सो भी व्यर्थ हो रहा है'। मित्रने कहा—'कहिये तो मैं उसके घर-पर जाऊँ; क्या मेरे जानेपर भी वह न आवेगा? 'यह सुन परमहंसजी प्रसन्न हो कहने लगे कि यदि ऐसा करो तो अच्छा ही है'। यह सुन वह मित्र उस युवा पुरुष-के घरपर गया और परमहंसकी प्रीतिवार्ता सुना के उनकी बुलाहट कही। वह युवा पुरुष उनकी इतनी अधिक कृपा देख के स्तम्भित हो गया।

परमहंसजी जो किसीके घर जाते थे तो बच्चोंके लिये अँगौछेमें अच्छे २ भोज्य पदार्थ साथ बांध ले जाते थे और लोगोंसे लड़कोंको कहला भेजते थे कि अमुक दिन हम अमुक स्थानपर जायंगे। बने तो तुम आइयो। उनके बुलानेसे जो बालक सुभीता पा के आते थे, उनके हाथमें वे पुटली देते थे और कहते थे कि एक किनारे जा

के सब कोई बांट कर खाओ और जिसको सुनते थे कि अभी वह नहीं आया, पीछे आवेगा, तो कहते थे कि उसका भाग रख के और सब खा जाओ।

किसी समय कलकत्तेके बाबू अधरचन्द्र बनियांटोलेमें अपने घर परमहंसजीको ले गये और बड़ा उत्सव किया। उस समय परमहंसजीके साथ बड़े २ भक्त आये थे। उत्सव होनेपर सबको चतुर्विध * वस्तु भोजन कराई गई। अधर बाबू जातिके स्वर्णवणिक् थे। अतः एक भक्त ब्राह्मणने उनके यहां भोजन करना नहीं चाहा। परमहंसजी तो कुछ नहीं बोले परन्तु पण्डित विजयकृष्ण गोस्वामी परमहंसकी ओर निहार कर उस ब्राह्मणसे बोले—'खानेमें दोष क्या है? प्रेम पूर्वक बर्त्ताव कर के एक २ कर के सबको अपना बना लेना होगा'। परमहंसजी विजय बाबूकी बात सुन कर बड़े प्रसन्न भये और जब हम लोग परमहंसजीके पास गये तो उनने मुझसे इस बातकी चर्चा कर अन्तमें विजय बाबूकी प्रशंसा की और कहा—देखो ध्यान करो। विजय बाबू कैसे बुद्धिमान् जन जान पड़ते हैं। उन्हें सबको अपना बना लेना भावता है।

---

* चबा के, चूष के, चाट कर, और पान कर के, आहार करनेके भेदसे भोज्य वस्तु चार प्रकारकी परिगणित होती है।

अलौकिक रामकृष्ण ।

—:*:—

क्या लड़कपन, क्या जवानी, क्या उतरती जवानी सब अवस्थामें भगवान् रामकृष्णके भीतर अद्भुत शक्ति देख के सब लोग वशीभूत हो जाते थे। हम लोग विस्तृत जीवनचरितमें इस विषयपर एक विशेष लेख लिखेंगे। यहांपर केवल दो एक साधारण शक्तिकी झलक दिखावेंगे।

एक समयकी बात है कि उड़ीसाके एक ब्रह्मसमाजीकी स्त्री परलोक सिधारी। सो उसने अपना सब धन बेंच के नक़द कई सहस्र रुपये कर श्रीयुत बाबू केशवचन्द्रको दे दिया और आप दीन हीन बन समाजमें धर्मका प्रचारक बन गया। उसका वैराग्य, सहनशीलता और तप देख के उस समय सब लोग अचम्भित हो गये परन्तु एक दिन वह मनुष्य परमहंसजीके पास केशवचन्द्रके साथ गया। उस मनुष्यको देखते ही परमहंसजीने केशवचन्द्रसे पूछा—'क्यों केशव ! तुमने इस मनुष्यको कहां पाया ?' केशव बाबूके किसी साथीने परमहंसजीके प्रश्नके उत्तरमें उस मनुष्यका नाम धाम

निर्देश कर के उसके त्रिलक्षण त्यागित्वका वर्णन किया। यह बात सुनते ही परमहंसजी बोले—'यह अब भी आ-मड़ेकी खटाई खायगा (अर्थात् अभी तो यह पुनः संसारी होवेगा')। अन्तमें यही हुआ कि उस मनुष्यका थोड़े दिनोंमें वैराग्यका झोंक ऐसा घटा कि नाममात्र-को भी वैराग्य न रहा। अचानक एक दिन उसने वकी-लसे चिट्ठी लिखा के पठाई * और अपने सब रुपये उगाह कर ब्राह्म दलको छोड़ के चला गया।

भगवान् रामकृष्ण कहा करते थे—मनुष्यकी आंख सीसेका पर्दा है। जैसे सीसेके पर्देसे घरके भीतरकी वस्तु देख सकते हैं, वैसे ही मैं भी मनुष्यकी आंख देख के पहिचान सकता हूं कि उसके मनमें क्या है, क्या नहीं है।

वे अन्य २ समयमें और भी कहा करते थे कि मनुष्यका देह काचकी आलमारी है। जैसे काचकी आलमारीके भीतरकी वस्तु बाहिरसे भी दीखती है, वैसे ही मुझे भी मनुष्यका शरीर देखते ही ज्ञात हो जाता है कि उसके भीतर क्या है, क्या नहीं।

* अर्थात् नालिश करनेकी धमकी दी।

एक मित्र कहते हैं—'मेरी पत्नी वार २ कहा करती थी, मुझे अनुमति देओ तो किसी समय मन्त्र दीक्षा लेऊं' पर मैंने उससे कहा कि' परमहंसजीसे इस बातमें सम्मति लिये विना मैं कुछ नहीं कह सकता'। परमहंसजी उस समय पीड़ित थे। इस कारणसे मैं उनसे कुछ पृछ न सका। इसी बीचमें मुझे आफ़िसमें एक पत्री मिली कि मेरी स्त्री मेरी अनुमतिकी प्रतीक्षा न कर के हमारे पैतृक इष्टदेवका मन्त्र ले चुकी। पत्र पढ़ते ही मेरा मन ऐसा चिढ़ा कि मैं तुरन्त सीधे काशीपुरको चला गया। उस समय परमहंसजीकी पीड़ाकी अन्तिम अवधि हो चुकी थी अर्थात् वे मरणासन्न थे। विशेष कर के डाक्टरोंने भक्तोंसे कह दिया था कि उन्हें भक्त जनोंसे अधिक वार्तालाप न करने देना। इसीसे भक्तोंने मुझसे कह दिया कि तुम परमहंसजीको केवल देख कर चले आइयो; कुछ बात न करियो। मैंने विचारा कि क्या करूं; जो आया हूं तो एक वार उन्हें प्रणाम कर लूं। सो जा के प्रणाम किया। प्रणाम करते ही परमहंसजीने सैनसे बुझाया कि तनिक पंखा तो डुलाओ। मैं उनकी आज्ञानुसार पंखा डुलाता ही था कि एक दूसरा भक्त घरमें आया। परमहंसजीने कहा

कि 'अमुकको स्त्रीके घरका वृत्तान्त इससे कहते नहीं' ? मैं उनकी बात कुछ न समझ सका; परन्तु उस बातके जाननेकी इच्छा मुझे बड़ी भई । इस कारण उस जनसे मैंने आग्रह कर के वह बात पूछी । वह मनुष्य बोला—अमुकको स्त्रीने पतिकी अनुमति लिये विना मन्त्र लिया है। सो उसका पति क्रोधसे अन्ध हो के परमहंसजीके पास उपस्थित हुआ है । परमहंसजीने उस मनुष्यकी बात सुन के उससे कहा—"तेरी पत्नी जो कुत्सित कार्य करे तो तू क्या करेगा ?" यह सुन के वह जन चुप हो गया । तब परमहंसजीने उस आगत जनसे कहा कि अनुचित कार्यसे तू उसे नहीं रोक सकता तो भला कार्य करनेसे क्यों रोकता है ? यह बात सुन के वह मित्र चमकित हो गया ॥

कलकत्तेके बाग़बाज़ारके '*बलरामवसु' महा-

---

* ये श्यामबाज़ारके प्रसिद्ध कृष्णवसुके वंशज थे । महात्मा कृष्णवसुने माहेशका रथ और कटकसे जगन्नाथपुरीतक ५६ मील सड़क बनवाई और उसकी दोनों ओर आमके पेड़ोंकी चार पांतियां लगाईं । इनके सात्त्विक भावके साक्षी, मेहश, कलकत्ता, पुरी भद्रक, कोठार, वृन्दावन इत्यादि स्थानोंमें अबलों इनके मठ और कुञ्ज कीर्तिस्तम्भ स्वरूप बने हैं और सदावर्त बँटता है । इनके वंशके सब लोग धर्मात्मा, भक्त और सात्विक हिन्दु भए हैं । बलराम बाबू धनी हो के भी अपने वंशके सद्गुणोंसे भूषित थे। ये मदहीन, बालकके समान सीधे लोकरञ्जन महापुरुष थे । इनका भक्त वंश बहुत दिनसे देवता और भगवद्भक्तोंकी सेवा करता आता है । इस वंशके सन्तानके भगवान् और भगवद्भक्त मानो प्राण हैं ।

श्यके घर परमहंसजी अधिक कर के आते जाते थे। बलराम बाबूने न केवल आप परीक्षा कर के देखा था बरन और लोगोंको भी दिखाया था कि जो वस्तु परमहंसजीके भोजननिमित्त आती थी, उसे छोड़ के दूसरी वस्तु भोजन वे नहीं करते थे। बलराम बाबू उन्हें जिस पात्रमें भोजन परोसते थे उसमें, गृहपूज्यदेवतार्थ और लड़कोंकी भी कुछ भोज्य, वस्तु जान बूझ के कभी २ मिला देते थे पर परमहंसदेवजी उसमेंसे अपने निमित्त लाया भोजन तो अलग कर के खा जाते थे; शेष दूसरोंकी वस्तु कदापि नहीं खाते थे॥

एक दिन परमहंसजीने हमारे एक विश्वासपात्र मित्रसे कहा—"क्यों जी तुम्हारे यहांका बेल पकने लगा वा नहीं ?" वह मित्र बोला—'अभी तो हमारे यहा बेल पकनेका मौसिम नहीं आया। उसके पकनेमें दो तीन महीनेकी देर है'। यह सुन परमहंसजी बोले—'हां देखो। मैं समझता हूँ कि कदाचित् दो चार फल मिलें,। यह सुन उस मित्रको आश्चर्य हुआ। वह तत्क्षण कृष्णनगरनामक ग्राममें चला गया और अपने घर जा के बेलके पेड़को बलपूर्वक झुका कर भरपर झकझोरा पर एक भी पक्का बेल (फल) न गिरा। निदान

उससे वह निरस्त हुआ पर रातभर उसी चिन्तामें नहीं सोया। दूसरे दिन तड़के बेलके पेड़के नीचे फिर ज्यों गया त्यों उसे तीन वार धप २ ऐसा शब्द सुनाई दिया। फलके गिरनेका शब्द सुन के वह आगे बढ़ा और देखा कि सचमुच चार समूचे पक्के बेल गिरे हैं। उसने उन्हें उठा के तुरन्त दक्षिणेश्वरको भेज दिया।

एक मित्र कहते हैं कि एक दिन मैं परमहंसजीके दर्शनको गया। परमहंसजीने मुझे तनिक पङ्खा डुलाने कहा। मैं पङ्खा हांकता था कि वे सो गये परन्तु तब भी मैं पङ्खा हांकनेसे नहीं रुका। हांकते २ मेरे हाथ भर गये। मैंने विचारा-'परमहंसजी तो इस समय सोते हैं। फिर मैं क्यों थकूँ'। उसी समय परमहंसजी-की आंख खुली। सो उनने मेरा हाथ रोक के कहा—'ठह-रो! और मत हांको'।

एक दूसरे मित्र मुझसे कहते हैं कि एक दिन मैं परमहंसजीके पास गया और देखा कि वे अस्तव्यस्त हो बरण्डेकी सीढ़ीपर बैठ के लगातार आंसू बहाते रोते हैं। तिसका कारण मेरी समझमें कुछ नहीं आया। मैं धीरे २ उनके पास गया और धीमे स्वरसे पूछा—'आप क्यों रोते हैं'? उनने उत्तर दिया कि' अमुक जन भारी

पीड़ित है । वह आज कैसा (कर्नल विश्वनाथ उपाध्याय हमने रामलालको भेजा । न जाकी लकड़ीके कारखाने- क्यों नहीं आया ' । परमहंस यह कह रातमें उनने एक पीड़ित था अर्थात् जिसके लिये परम देनेके निमित्त समय वह उनके पास आन पहुँचा * । येतनेपर वे कुछ बोल न सका । जी-

एक दिनकी बात है कि परमहंसजीके पास बहुतसे लोग इकट्ठे थे; इतनेमें वे बोले । मेरा मन चाहता है कि हींगडाली ताती कचौड़ियाँ खाऊँ । यह सुन के एक भक्त बोला-'आज्ञा हो तो इसी समय कलकत्ते जा के कचौड़ियां लाऊँ' । परमहंसजीने कहा-'नहीं; न चाहिये क्योंकि कलकत्तेसे ल्याई जातेतक कचौड़ी गरम कैसे रहेगी' ? अहो ! इसी अवसरमें एक भक्त हींगडाली ताती २ कचौड़ियां लिये परमहंस-

---

* ये ही जन उन दिनो जगत्में स्वामी विवेकानन्द इस नामसे विख्यात थे । विवेकानन्द, आमेरिका तथा चिकागोके धर्ममेले (Parliament of Religions) में हिन्दुधर्मपर व्याख्यान दे आये और सुननेवालोंका चित्ताकर्षण किया और अब भी आमेरिकाके प्रत्यक नगरमें हिन्दुधर्मका प्रचार करते थे कि हिन्दीमें इस ग्रन्थके अनुवादकालमें विवेकानन्दजी परलोकवासी हैं । आमेरिकावाले इनके व्याख्यानसे शान्तिफल और चमत्कार प्राप्त हुए । तीस बर्षकी अवस्थामें इस हिन्दु संन्यासीकी अद्भुत बोधशक्ति, असीम ज्ञान, अनुपम साहस और असाधारण विद्वत्तापर पाश्चात्य लोग चौकन्ने हो रहे हैं । परमहंसके संन्यासी भक्तोंमें ये एक भक्त थे । इनमें विचारशक्ति, अद्भुत तेज और उत्तमोत्तम अनेक गुण थे । इसका अधिक वर्णन इनके व्याख्यानकी पुस्तकमें देखो ।

उससे वह निरस्त हुआ प॰ मनुष्य पहिले परमहंसजीके सोया। दूसरे दिन ल्परन्तु बीचमें बहुत दिनोंसे नहीं गया त्यों उसे तीचानक उसके आनेसे सबको आश्चर्य फलके गिरनेन्मित्र परमहंसजीके पास जभी एकले कि सच्चभी परमहंस जी उनसे पूछते थे- भला तुम्हारा उद्र कैसे चलेगा ? वह स्वात्मनिर्भरशील मित्र इससे पहिले सौ रुपयेकी नौकरी छोड़ बैठा था। उसे भोजन-की कुछ भी चिन्ता न थी। कैसे चलेगा ? तुम क्या करके खाओगे ? इत्यादि वाक्य परमहंसजीके मुख-से सुन के वह हंसता था और समय२पर बर्जता भी था कि आप चिन्ता न कीजिये पर तब भी परमहंसजी कभी २ पूछते ही थे कि "तुह्मारा कैसे चलेगा" ? दश वर्ष बीतनेपर उसी मित्रने कहा कि अब परमहंसजीकी अन्तर्दृष्टिशक्तिका प्रभाव प्रकट होनेसे मैं आश्चर्यित हुआ हूँ'। मेरा निबाह कैसे होगा ? इस प्रश्नका भाव मैं इस समय देखता हूँ कि वह मेरे भीतर गुप्त रूपसे बना है। अहो दश वर्षके पश्चात् मुझे जो बात अब सूझी है; मैं समझताहूँ कि वही बात परमहंसजी दश वर्ष पूर्वहीसे जान चुके थे, जिसे मैं हंसीमें उड़ा देता था ॥

नेपालके राजप्रतिनिधि कर्नेल विश्वनाथ उपाध्याय जिस समय घुसड़ी गावँके सालकी लकड़ीके कारखानेमें कार्य करते थे उस समय कभी रातमें उनने एक स्वप्न देखा कि एक मनुष्य तत्त्वज्ञान देनेके निमित्त उनको बुलाता है। तदनन्तर कुछ दिन बीतनेपर वे दैवात् एक दिन दक्षिणेश्वरमें आए और वहां परमहंसजीको देख चेत कर उन्हें पहिचाना कि ये वे ही पुरुष हैं जिनने मुझे स्वप्नमें दर्शन दिया। सो परमहंसजीको ही ठीक स्वप्नदृष्ट पुरुष जान के उनने दैवी घटना मानी। परमहंसजीने भी उनसे ऐसी बातें कीं कि मानो पहिलेसे कुछ पहिचान थी।

परमहंस दक्षिणेश्वरमें रह के दूरकी बातें दिव्य दृष्टिसे देखते और यथावत् कह भी देते थे। वे मनुष्यके मनकी बातें और भाव बूझ के बता देते थे। इन सिद्धियोंके अतिरिक्त परमहंसजीमें यह भी योगशक्ति थी कि दोनों भौहँके बीचमें जो 'द्विदल कमल' है, उसे वे अपनेसे विकसित कर लेते और उसकी कर्णिकामें काली, दुर्गा, शिव, राधाकृष्ण इत्यादि दिव्य प्रकाशयुक्त देवताओंका आविर्भाव कर के उनका दर्शन करते थे और उसीके साथ उनके हृदयमें निर्यत्न भगवन्नाम

स्फुरित हो के मुखसे उच्चरित होता था। दक्षिणेश्वरमें वसते हुए उनने आप अपने शरीरसे श्रीविजयकृष्ण गोस्वामीको ढाकेमें जा के दर्शन दिया और मथुरा बाबू-को अपने शरीरमें शिव और कालीकी मूर्ति दिखलाई। उनका छायात्मक देह अब भी बना है। फलतः ऐसी बहुतसी अद्भुत २ सिद्धियां वे रखते थे। उनका वि-स्तारसे निरूपण यहां नहीं हो सकता।

———:o:———

परमहंसजी अवतारी पुरुष थे।

अन्य २ भावके समान अवतार भाव भी उनमें सब अवस्थामें देखा गया है। उनका अलौकिक जन्म, उनके पिताका स्वप्नदर्शन, गर्भमें अवस्थानकालमें माता-को नाना देवों और देवियोंका दर्शन होना, छ वर्षकी वयमें माताको सोलह वर्षका हो के अपनेको दिखाना इत्यादि उनके जीवनमें अनेक २ घटनाएँ घटित हुई हैं जिनसे उनका अवतारी पुरुष होना स्पष्ट रूपसे व्यक्त है।

जो लोग ऊपरकी घटनाओंका विश्वास करनेमें हिचकिचाएँ उन्हें विचारना चाहिये कि परमहंसजी न तो राजा थे, न ज़मींदार थे, उनने तो एक दरिद्र ब्राह्मण-

की पर्णशालामें छोटा बालक हो के जन्म लिया, उस बालकके सम्बन्धमें इतनी जनश्रुति क्यों फैल गई ? उक्त घटनाएँ उनके भये अनन्तर शिष्योंकी निज गढ़न्त भी नहीं हैं। थोड़ासा सोचनेसे यह भेद खुल जायगा। उनके गाँवके रहनेवाले कोई२ पुराने लोग अबतक साक्षी हैं, जो बतलाते हैं कि उक्त घटनाएँ सत्य हों वा मिथ्या, परन्तु श्रीभगवान् रामकृष्णके सम्बधमें उनकी बाल्यावस्थासे उन सब बातोंको वे सुनते आते हैं।

उनके गाँवके ज़मींदार गङ्गाविष्णु लाहाकी माता गदाईको बड़ा प्यार करती थीं। बढ़ियां वा घटियां जो कुछ उन्हें मिलता था गदाईके निमित्त वे रख छोड़ती और उत्तम २ व्यञ्जन बना के गदाईको भोजन कराती थीं और बीच२में कहती भी थीं कि मैं समझती हूँ तू मनुष्य नहीं है, कोई देवता है। ऐसा सुना गया है कि कामारपुकुरका रहनेवाला एक बूढ़ा दुकानदार परमहंसजीके लड़कपनमें उनके अद्भुत भाव देख के जान गया था कि ये मनुष्य नहीं हैं, किन्तु लीला करनेके निमित्त भगवान् अवतार ले के अवतीर्ण हुए हैं। वह इसी निश्चयके कारणसे एक दिन परमहंसजीको मैदानमें अपने साथ ले गया और उनके हाथमें एक दोनाभर

सुभोज्य पदार्थ दे कर शोक करता बोला—'गदाई ! तुह्मारी अद्भुत भावी लीला मैं न देख पाऊँगा '।

आगे चल कर मध्यलीलामें भी दिखाई पड़ता है कि परमहंसजीने मथुरा बाबूसे कहा था—"मेरे सब भक्त हैं। माताने कहा है—वे भी आवेंगे "। मथुरा बाबू कभी २ कहते थे—'क्या बाबा ! तुह्मारे भक्त आये क्या' ? और कभी २ मथुरा बाबू यह भी कहते थे—"बाबा ! आपको दूसरे भक्तसे क्या करना है ? मैं अकेला तुह्मारे सौ भक्तोंका कार्य करूंगा। आज्ञा करिये, क्या करना होगा; मैं अभी उसे करूँ"।

उसी समय (अर्थात् मध्यलीला)में परमहंस-जीको भक्तगणका विरह क्लेश देता था। लघुताईकी शङ्कासे उच्च स्वरसे वे नहीं रोते थे किन्तु देवीके मन्दिर-में जब आरती होती और बाजे बजते थे, उस समय वे सूनेमें जा के भक्तोंके विरहमें उच्च स्वरसे रोते थे।

उन्हीं दिनोंकी बात है कि दक्षिणेश्वरमें एक बड़ी भक्तिमती और परम पण्डिता ब्राह्मणी आई। उसका वर्णन पहिले हो चुका है। वह परमहंसजीके आचरण और अवस्था देख के बोली'-मानो ये नित्यानन्दकी खोली-में चैतन्यचन्द्रकी ज्योतिका आविर्भाव हैं अर्थात् इनका

देह नित्यानन्दके तनके समान है और उसके भीतर श्रीगौराङ्गजी (चैतन्यचन्द्र) विराजते हैं'। सर्व शास्त्र पढ़े पण्डित वैष्णवचरण, बर्दवानके महाराजाके सभा-पण्डित विद्वद्वर पद्मलोचन और इन्देशनाम ग्रामके निवासी भक्तप्रवर महाप्राज्ञ गौरीदत्त पण्डित इत्यादि कई एक प्रसिद्ध महानुभाव लोगोंने उस समय आ के स्वामी-का दर्शन किया और लक्षणद्वारा उन्हें अवतारी पुरुष पहिचान के भगवान्के तुल्य मान के उनकी स्तुति की।

हलधारीनामक एक जन परमहंसजीके आत्मीय थे। ये वेदान्तकी बातोंको भले रूपसे समझते थे। एक दिन मन्दिरमें उपासना करते २ परमहंसजी उनके पास पहुँच के आत्मस्वरूपसे प्रकट हुए। उन्हें तुरत पण्डित हलधारीजीने भी भगवान् समझ के उनका स्तुतिगान किया और कहा—'अब मैं पक्का समझता हूँ कि आप मनुष्य नहीं हैं किन्तु भगवान् हैं'। परमहंसजीने कहा—'तुम भूल जाओगे। यह बात तुह्मारे मनमें स्मरण न रहेगी'। पण्डित हलधारीने कहा—'नहीं; मैं कभी न भूलूँगा' परन्तु परमहंसजीने अपना रूप जब यहांसे अन्तर्धान किया, तब हलधारी पण्डितने उन्हें पुनः मनुष्य जाना।

कलकत्तेके कालीटोलेमें चैतन्यसभाके मध्य श्री-श्रीगौराङ्गजीका एक आसन है। एक दिन उस सभामें जा के परमहंसजी उसी आसनपर बैठ गये। कोई २ तो उन्हें उस आसनपर बैठे देख के भगवान् समझ के पूजा करने लगे परन्तु अन्य २ जन उनपर बहुत कुड़कुड़ाए। कालनाके प्रसिद्ध साधु बाबा भगवान्-दासजी तब जीवते थे। वे यह बात सुन के परमहंस-जीपर बड़े जगे। परमहंसजीने यह समाचार सुना; सो मथुरा बाबू और हृदयको साथ ले नाव कर के गङ्गामें घूमते २ एक दिन कालना चले गये। वहां पहुँच कर परमहंसजी हृदयको साथ ले उक्त बाबाजीके आश्रमपर पधारे। उस समय परमहंसजीको भावावेश हुआ। परमहंसजी-के भावके लक्षण पहिचान उन्हें महानुभाव जान के बाबाजी सकम्प हुए और जब यह सुना कि' ये ही हैं जो चै-तन्यकी गद्दीपर बैठ गये थे;' तब बाबाजीने उनसे अ-पनी चूककी क्षमा मांगी।

ऊपर उक्त घटनाओंको भली भांतिसे विचार कर देखनेसे जान पड़ता है कि परमहंसजीके भीतर अव-तार का भाव सब अवस्थामें बना रहा परन्तु वे अपना अवतारत्व अधिकोंसे छिपाते थे। किसी २ समयमें किसी २

विशेष जनके सम्मुख अपने भावको प्रकट करते थे और किसी २ समयमें किसी २ विशेष मनुष्यके सम्मुख छिपाते थे जिससे सिद्ध होता है कि परमहंसजी कोई महानुभाव थे। परमहंसजीके भाञ्जे श्रीयुत हृदयानन्द मुख्योपाध्याय उनके पूरे भक्त सेवक और सदा सहचर रहा करते थे। हृदयका घर सिंहड़नामक गावँमें था। यह गांव कामारपुकुरसे दो कोस पश्चिममें है। परमहंसजी सिंहड़ गावँके जलवायुको कामारपुकुरसे उत्तम समझ के बहुधा हृदयके घरहीपर रहते थे। उस गावँसे कोसभर दक्षिण दिशामें फुलुई श्यामबाज़ार नामका एक गावँ है। वहांपर एक वार परमहंसजीने अपना स्वरूप कई दिन दिखाया था। जितने दिन परमहंसजी वहां रहे, तितने दिन बड़े धूमधामसे भगवत्संकीर्तन हुआ करता था। उसी संकीर्तनके बीच २ में भावसमाधिमें परमहंसजी डूब जाते थे। कभी तो वे अत्यन्त उछल कर नाचते थे परन्तु कभी २ उनकी समस्त शारीरिक चेष्टा रुक जाती थी। उन्हीं दिनोंका यह ग़ौगा उठा है कि ऐसा मनुष्य आया है, जो एक वार मर जाता है और फिर जी भी उठता है। फलतः उस मनुष्यको देखनेके निमित्त झुण्डका झुण्ड भीड़ चारो ओरसे उमड़ती चली

आने लगी। उसीके साथ चारो दिशाओंसे संकीर्तनियों-के दल आसपासके गावोंसे अनगिनती आने लगे। सब किसीका उद्देश्य यह था कि पागलकी नाईं नाचते जो परमहंसजी हैं, तिनका दर्शन करें। निदान बहुसंख्यक लोग भोजन शयन त्याग कर के संकीर्तनमें तत्पर हो गए। किसीको दिनरातका स्मरण न था। जब इस ढङ्गसे एक सप्ताह बीता तब परमहंसजीका सबके स्वास्थ्यपर ध्यान गया। सो उनने अपना भाव सकेल लिया और छिपे २ सिंहड़को चल दिया। उनकी उक्तविध दैवी शक्ति देख के उस समय प्रायः सभी जन उन्हें प्रत्यक्ष चैतन्य महाप्रभु निश्चय कर के उनपर भक्ति करने लगे।

परमहंसजी जिस २ दिन (१) कल्पतरु बने थे, अथवा जिस २ दिन (२) काली माता बन के पूजा लेते थे, उस २ दिन परमहंसजीमें प्रकट परमेश्वरभाव देख के बहुतेरे लोग चकित होते थे।

एक अध्यापक पण्डितका वृत्तान्त सुना जाता है

---

(१) सन् १८८६ ईसवी पहिली जनवरी सांझकी वेला परमहंसजीने बहुतोंपर दया की कि उनमें स्वशक्ति संचार कर दिया। इसे छाड़ के और दिन भी विशेष कर के भौमवार तथा शनिवारको कभी एक जन, कभी दो जन, कभी तीन वा चार जन-पर उसी प्रकारसे कृपा करते थे और अपने जीवनके अन्ततक वैसे ही कृपा करते रहे।

(२) बङ्गाली सन् १२९२ श्रीकालीपूजाके दिन प्रातःकाल।

कि वह एक दिन उत्तरपाड़ाके किसी सम्पन्न मनुष्यको देखने गया था। वहां उस धनीकी बैठकमें हरिदास बाबाजीका रहस्य (चरित) पाठ होता था। यह देख पण्डित मनमें खेदित हुआ और वृद्ध ज़मींदारसे बोला—'आप आज जीवते हैं! कल मर जायंगे, तौ भी आपको बुढ़ापेमें हरिदासका रहस्य पाठ करना अच्छा लगता है'! बुद्धिमान् ज़मींदार उनका तात्पर्य समझ गया और उत्तर दिया—'हां; शास्त्रकी पुस्तकें अधिक नहीं तो सौ बार मैंने पढ़ी होंगी पर उससे क्या हुआ? कुछ लाभ नहीं भया'। यह बात सुन के पण्डितने मन ही मन सोचा कि 'ज़मींदार सत्य ही तो कहता है क्योंकि मैंने अबतक शास्त्र पढ़े पर उससे मुझे भी क्या लाभ हुआ? कुछ भी तो नहीं मिला'। निदान पण्डितके मनमें यह बात उदित हुई कि रानी रासमणिकी कालीबाड़ीमें सुनते हैं—'रामकृष्ण नाम एक अच्छे परमहंस हैं। चलो उन्हें देख आवें; क्या सिद्धि प्राप्त है'। सो उसी समय पण्डित गङ्गापार दक्षिणेश्वरको चला आया। उस समय परमहंसजीके निकट बहुतसे लोग बैठे थे और परमहंसजी बिछौनेपर सबसे ऊँचे आसनासीन थे। नीचे चारों ओर अच्छे २ लोगोंको बैठे देख के पण्डितकी बुद्धि च-

करा गई। उसने स्वामीसे पूछा—'आप परमहंस हैं ? वाह २'। इतनेमें परमहंसजीके बिछौनेकी ओर पण्डित-की दृष्टि पड़ी। सो फिर बोला—"बाबा रे ! यह मशहरी है !" परमहंसजीने अँगुली उठा के अपनी वार्निस की हुई पनही (स्लीपर) दिखाई । उसे देख पण्डित बोला—'हां ! जूती है। वाह २'। यों परमहंसजी पुनः २ अँगुली उठा के अपनी अन्य २ वस्तुएँ दिखाते गये; उन्हें देख २ पण्डित कहता चला—'हां ! २ यह अमुक वस्तु है ? यह अमुक पदार्थ है ?' अन्तमें पण्डित परमहंसके आसनपर बैठ के बोला—"आज मैंने अच्छा परमहंस देखा"। तत्पश्चात् शास्त्रका कोई वचन पढ़ के वहां उपस्थित सब जनोंको सुना कर कहा—"आप लोग भोले भाले मनुष्य हैं। तभी तो श्रम कर के कलकत्तेसे यहां आए हैं। सच पूछिये तो आप लोगोंने धोखा खाया। परमहंसकी स्थिति ऐसी नहीं होती है। परमहंस-की स्थिति जैसी होती है, तिसका निरूपण इस श्लोकमें है, सुनो। ऐसा बोल कर सउ पण्डित ने अपने पठित श्लोकका अर्थ कथन कर के सबको समझाया। तदनन्तर सांझ भई देख पण्डित बोला—"गया सो गया; अब और समय व्यर्थ क्यों बीते; चलें अपना नित्य कर्म करें।

मनमें यह कह के पण्डित गङ्गातीर सन्ध्या वन्दन करने चला गया। गङ्गामें हाथ मुँह धोया और मुखमौन हो आंखें मद के अपने इष्टदेवकी मूर्तिका ध्यान लगाया। थोड़ी देर ध्यान किया कि अचानक वह पण्डित उचक पड़ा और दौड़ के परमहंसके घरमें घुसा। घुसते ही देखता क्या है कि परमहंसजीको समाधि लगी है! तब हाथ जोड़ के उनके पास पण्डित खड़ा हो रहा और परमहंसजीको 'आप भगवान् हैं २'। वार २ यों कह कर के उनकी स्तुति की।

केशव बाबूने परमहंसजीको अवतार मान के कभी उद्घोषित नहीं किया, परन्तु हमारे मित्र रामचन्द्रदत्त महाशयकी लिखी परमहंसजीकी जीवनीपुस्तकमें लिखा दृष्टि पड़ता है कि लोग परमहंसजीको अवतार मान कर पूजन कर रहे हैं; न केवल यह बात केशव बाबको विदित थी, बरन वे आप भी स्वामीके अवतार भावके सपक्ष थे।

ब्रह्मसमाजी लोगोंको निम्नलिखित बात कहा-तक विदित है, सो मैं नहीं जानता पर मैंने अपने एक बड़े विश्वासू जनसे यह बात सुनी है कि केशव बाबूने अपनी बुढ़ौतीमें परमहंसजीको अवतार मान के

गोपनमें उनकी पूजा की। एक दिनकी बात है कि परमहंसजी केशव बाबूके घरपर गए थे। वहां पहुँचने-पर केशव बाबूने परमहंसजीसे कहा—"आप एक दिन मेरे उपासनागृहमें पधारें तो मेरा वह घर पवित्र होवे। परमहंसजी केशव बाबूके उपासनागृहमें गये। तब केशव बाबूने परमहंसजीके पावोंपर पुष्पाञ्जलि अर्पण कर के कहा—'ऐसी मेरे पूजा करनेकी चर्चा आप दूसरे किसीसे न कीजियेगा' ? इस बातके व्यतीत होने अनन्तर एक दिन भक्तिस्वरूप विजयकृष्ण गोस्वामी परमहंसजीके पास आये। परमहंसजीने केशवचन्द्रकृत पूजाके वृत्तको विजयकृष्णके निकट खोल दिया और कहा—'केशवचन्द्रने अपना तो बनाया परन्तु पूजन-को छिपा के औरोंका बिगाड़ा'। मैंने यह समाचार उक्त गोस्वामीजीसे ज्यों ही सुना त्यों ही लोगोंके बीच उसे फैला दिया।

परमहंसजी अपने मुहसे भी अपनेको कभी २ अवतारी पुरुष बोल कर प्रकट करते थे। इस बातके प्रमाण भी बहुतेरे हैं। परमहंसजी कहते थे कि 'जैसे कभी २ राजा लोग अपने राज्यमें भेष बदल के घूमते हैं और उन्हें कोई चीन्ह नहीं पाता; उसी प्रकारका मैं

भी हूँ, अर्थात् भेष बदल के आया हूँ। इस वार सब मुझे न चीन्ह पावेंगे। थोड़े हैं; जो चीन्हेंगे। मेरे भोजनका भाग आगे (पहिले) किसीको मत देना'। दूसरेसे कहा था—'मेरा भजन कर'। अन्यसे कहा था—'अपना इष्ट मन्त्र मुझे वापिस कर'। न्यारेसे कहा था—'तुम्हें मन्त्र न लेना होगा'। उनकी स्पष्टाक्षर कथित ये बातें उन्हें अवतारी पुरुष सिद्ध करती हैं।

परमहंसजी कहते थे—"मेरे ऊपर सब भार छोड़ दो"। परमेश्वरके विना भला! कौन यह कह सकता है?

परमहंसजीने किसीसे कहा था—'प्रातः काल मेरा मन जगत्भरको व्यापता है। इस कारण उस वेला मेरा स्मरण किया कर'।

दूसरे किसीसे २ परमहंसजीने कहा कि—'धर्म कैसे मिलता है? ईश्वर कैसे मिलता है? इस जिज्ञासासे जो यहां आवेगा, उसका मनोरथ पर्ण होगा'।

परमहंसजी कहते थे—यहां आना जाना बस है। अधिक कुछ करना न होगा।

अपने भक्तोंसे परमहंसजीने कहा था—'तुम्हें कुछ भजन साधन न करना पड़ेगा। यदि मुझपर सोलहो आने पूरा विश्वास रक्खोगे तो सब कुछ सिद्ध हो जायगा'।

वे कहते थे कि 'पहिले एक सांचा बनानामात्र कठिन है । सांचा बननेपर जितनी चाहो, उतनी मूर्ति गढ़ लो । मैं वैसा ही सांचा हूं । अब तुम्हारे लिये सौ२ मूर्तियां बन सकती हैं' ।

एक दिन परमहंसजी देवीके कमलासनपर बैठे थे । हृदय बाबूने यह देख के कहा—'मामा । जिस आसनपर आप बैठे हैं, यदि आपकी इच्छा हो तो उससे भी उत्तम आसन बनाऊं' । यह सुन परमहंसजी बोले—'बाप रे हृदय! तैं इससे उत्तम आसन कैसे बना सकता है रे बाप'! यह कह फिर बोले—'एक आसन बनानेको क्या कहता है? माता कहती हैं कि गांव २ घर २ मेरा आसन होगा। घर २ मेरी पूजा करते लोग मेरी प्रतिमा पूजेंगे । ये बातें स्वामी निज मुखसे बहुत दिन पूर्व ही प्रकट कर कह चुके थे ।

दिन रात सब समय वे जभी ईश्वरका नाम लेते तभी उन्हें समाधि लगती थी । उस समय आंखों-की पलकें हिलती न थीं । दोनों आंखोंसे प्रेमजलविन्दु मुखमण्डलपर ढरते थे । मुख मुसकिराता लगता था । बाह्यज्ञान नहीं रहता था । समस्त शरीर नि-श्चेष्ट हो जाता था । मिट्टी पत्थरके सदृश स्वामी पड़े

रहते थे। कानमें वार २ प्रणव (ओंकार) उच्चारण करनेसे उन्हें धीरे २ बाह्यज्ञान आता था।

परमहंसजीने श्रीमुखसे कहा था कि 'बारह बजे घड़ीकी दोनों सूइयां जैसे मिल जाती हैं, मेरा मन भी उसी प्रकार सब दिन सब वेला ब्रह्ममें निमग्न हो के सटना (तन्मय होना) चाहता है, पर जीवकी भलाई करनेके लक्ष्यसे मैं बल कर के उसे बहिःप्रवण कर लेता हूं अर्थात् बाहर झुका लाता हूं'। वे कहते—थे जब मैं देखता हूं कि मेरा मन समाधिस्थ होने लगा, उसके पूर्व मैं बड़े बलसे एकाग्रचित्त हो के कहने लगता हूं, हुक्का पीऊंगा पर तौ भी समाधिको नहीं रोक सकता हूं; अन्तको समाधि लगती ही है परन्तु समाधिके पूर्व तम्बाकू पीनेकी इच्छाहीसे समाधि छूट जाती है। फलतः इसी प्रकारकी नाना भावनाएं कर के मैं मनको बाहिर झुका रखता हूं। समाधिमें मनकी क्या दशा रहती है? इस प्रश्नके पूछनेपर भगवान् रामकृष्ण कहते थे—'मछलीको जलमें छोड़नेसे जो सुख उसे होता है, समाधिमें उसी प्रकारका परमानन्द मनको प्राप्त होता है। प्रस्तुत पुस्तकके पढ़नेवाले लोग इसको कुछ समझ सकते हैं कि समाधि साधनेवाला

समाधिकी अवस्थाको कितना चाहता है । वैसी उत्तम अवस्थाको भी स्वामीजी जीवोंकी भलाईके लक्ष्यसे छोड़ देते थे तो उनकी इस दयाके भावको देख विचार कर एक वार सोचो—उन्हें परस्वार्थ कितना प्रिय था । क्या हमसरीखे जीव ऐसा कभी कर सकते हैं । स्वामीके तादृश निःस्पृह होनेसे हम सब कोई उनके ऋणबद्ध हैं । जिनने बहुतसे साधन कर के अनमोल सम्पत्ति हमलोगोंको दान करनेनिमित्त संपादित करनेको अपना तन मन लगाया, उन्हींके श्रीयुत चरणारविन्द ध्यान कर के मैंने यह जीवनचरित संक्षेपसे लिख के समाप्त किया ।

इति जीवनचरित समाप्त ।



श्रीगणेशाय नमः ॥

परमहंसचरित

भगवान् रामकृष्णके उपदेश ।

ईश्वर ।

ईश्वरका अस्तित्व ।

(१) रात्रिके समय आकाशमें असंख्य नक्षत्र दिखाई देते हैं, पर सूर्योदय होनेपर वे दृष्टिगोचर नहीं होते (१) तो उससे क्या कोई कह सकता है कि आकाशमें तारे नहीं हैं ? इसी प्रकारसे अविद्याके रहते यदि ईश्वरका दर्शन नहीं होता है तो क्या कोई कह सकता है कि ईश्वर हई नहीं है ? ॥

(२) ईश्वरके नाम और भजनके भाव अनन्त हैं। उनमेंसे जिस जनको जिस नाममे उसे पुकारना तथा जिस भावसे भजन करना रुचता और भावता है, वह उसीसे बुलाता ध्यान करता है और ईश्वरको पाता है ॥

:o:

ईश्वरका एकत्व ।

(३) जैसे एक ही जल पदार्थको भाषाभेदसे कोई "वारि"

---

(१) अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृश्रे कुहचिद्दिवेयुः ।

ऋग्वेदसंहिता ।

कोई "पानी" तथा कोई "एकुवा" कहता है; वैसे ही सच्चिदानन्द-को भिन्न २ देशमें कोई "अल्लाह" कोई "हरि" कोई "गोड" आर कोई 'ब्रह्म' कहता है॥

(४) जैसे कुहांरकी दुकानमें हंड़िया, मटका और दीया इत्यादि विभिन्नाकार पृथक् २ पात्र बने रहते हैं परन्तु सभीके भीतर मिट्टी एक वही रहती है; ईश्वर भी उसी प्रकार एक हो कर देशादिके भेदसे भिन्नरूप प्रकाशित हुआ है॥

——:*:——

ईश्वरका प्रकाश बहुविध है।

(५) प्रश्न—सर्व धर्म्ममतोंमें एक ईश्वरहीकी चर्चा लिखी है। फिर भिन्न २ धर्म्ममतावलम्बी लोग ईश्वरको भिन्न २ दृष्टिसे क्यों देखते हैं?

उत्तर—ईश्वर एक ही है। सत्य है; परन्तु भिन्न २ धर्म्ममता-वलम्बियोंके भाव विभिन्न २ हैं। जैसे परिवारमें गृहस्वामी गृहस्थ एक ही मनुष्य होता है परन्तु दृष्टिभेदसे वह किसीका पिता, किसी का भ्राता और किसीका पति माना जाता है; ऐसे ही एकमात्र ईश्वर पुरुषोंके भावभेदसे भिन्न २ रूप प्रतीति किया जाता है॥

(६) जैसे सीढ़ी, बांस, रस्सी, इत्यादि नाना योगसे छत्तके ऊपर चढ़ते हैं; तैसे ईश्वरके पास पहुंचनेके अनेक मार्ग हैं। प्रत्येक धर्ममत एक २ मार्ग खोलता है॥

——:*:——

सब मत ईश्वरकी प्राप्तिके पन्थ हैं।

(७) जैसे कालीघाटकी कालीबाड़ीमें जानेके अनेक मार्ग

हैं; तैसे ही भगवान्के घर जानेके बहुतेरे मार्ग हैं पर प्रत्येक मार्ग अन्तमें एक मार्ग हो के ईश्वरको मिलाता है ॥

(८) जैसे एक ही सुवर्णसे नाना प्रकारके आभूषण बनते हैं; तैसे ही भिन्न २ देशमें एक ही ईश्वर भिन्न २ प्रकारसे पूजित होता है, तथापि ईश्वर एक अभिन्न रहता है ॥

(९) जिसे दश मनुष्य जानते मानते हैं; जानना चाहिये कि उसके भीतर भगवान्की विशेष विभूति है ॥

(१०) धर्म्ममत अर्थात् प्रस्थानभेद जितने हैं, सब ही धर्म्मके एक २ मार्ग हैं ॥

(११) जैसे एक ही चीनीका भिन्न २ खिलौना बनता है; तैसे ही भिन्न २ देशमें ईश्वर भिन्न २ रूपसे पूजित होता है ॥

——:*:——

साकार और निराकार ईश्वर ।

(१२) दो मनुष्योंके बीच भारी तर्क उठा। एक कहता था—उस खजूरके पेड़पर बडा सुन्दर लाल रङ्गका गिरगिटान है। दूसरा कहता था, नहीं; तुम भूलते हो, गिरगिटान लाल नहीं, किन्तु नीला है। जब उन दोनोंमें परस्परका विवाद न निपटा, तब अन्तमें वे दोनों खजूरके वृक्षके नीचे गये और वहांके रहनेवाले एक जनसे पहिलेने पूछा कि क्यों महाशय ! आपके इस पेड़पर लाल रङ्गका गिरगिटान तो नहीं है ? उस मनुष्यने उत्तर दिया—हां, है तो। तब दूसरेने कहा—वह गिरगिटान लाल नहीं, किन्तु नीला है। उसके उत्तरमें भी उस मनुष्यने कहा—जी हां, ऐसा ही है; क्योंकि उसे विदित था

कि गिरगिटान बहुरूपिया होता है । अतः जिसने जैसा पूछा; उसने उसे उसके प्रश्नानुरूप वैसा उत्तर दिया । इसी प्रकार सच्चिदानन्द हरिके भी नाना रूप हैं । जो उपासक जैसा रूप ध्यावता है, हरिको उसी रूपमें पावता है, क्योंकि जो जन भगवान्‌का बहुरूपिया होना जानता है, वह यह भी जानता है कि सब पदार्थ हरिमय हैं अर्थात् हरिजीके ही वे भिन्न २ रूप हैं; हरि ही साकार हैं; हरि ही निराकार हैं; और भी हरिके कितने रूप हैं, यह हम लोग पूरा नहीं जान सकते ॥

(१३) वास्तवमें अग्निका कोई रूप नहीं है परन्तु प्रज्वलित अङ्गारोंमें उसका एक प्रकारका रूप प्रादुर्भूत देखाई देता है अर्थात् उस समय अरूप अग्नि, रूप धारण कर लेता है । यही दृष्टान्त है कि परमेश्वरका कोई आकार नहीं है पर कभी २ वह विशेष आकार धारण कर लेता है ॥

(१४) जबलों घण्टेका शब्द सुनाई पडता है, तबतक वह (शब्द) व्यक्त रहता है । तत्पश्चात् अव्यक्त रहता है । तैसा ही साकार और निराकार ब्रह्मका भेद है ॥



ब्रह्मनिर्णय ।

(१५) प्रश्न—ब्रह्मका स्वरूप क्या है ?

उत्तर—ब्रह्म निर्गुण, अचल, अटल, सुमेरुवत् है ।

(१६) नाम, धाम और श्याम ये तीनों चैतन्यस्वरूप हैं ।

(१७) भगवान् सूईकी नोकमें हाथी पैठा कर हाँक सकता है। तात्पर्य यह है कि

"अनहोती प्रभु कर सके
होनहार मिट जाय।

(१८) किसी समय श्रीयुत बाबू केशवचन्द्रसेनने परमहंसदेवजीसे पूछा कि विराट् रूपमें भगवान्की मूर्त्तिका संकुचित होना क्योंकर संभाव्य है? परमहंसदेवजीने कहा—"सूर्य पृथ्वीसे बहुत बड़ा है परन्तु बहुत दूरमें रहनेके कारण हम लोगोंको वह एक छोटी थालीके समान दृष्ट पड़ता है। भगवान् भी उसी प्रकार संकुचित नहीं हैं; परन्तु दृष्टिसे परे होनेके कारण हम लोगोंको वह संकुचित सा प्रतीत होता है।

(१९) ईश्वर सत्य नित्य हो के लीला करता है। उस अखण्डसच्चिदानन्दकी लीलाका पार न पा के मैं मझधारमें उभुक चुभुक करता डूबता हूं; परन्तु जब मायावी भगवान्को पाऊँ तब उसकी लीलाका भेदज्ञानरूपी पार प्राप्त करूं।

—:o:—

व्यक्त और अव्यक्त ईश्वर।

(२०) पानी जम जानेसे जैसा हिम बन जाता है; उसी प्रकार साकार मूर्त्तिको सच्चिदानन्दका घनीभाव समझना चाहिये।

(२१) ईश्वर एक है परन्तु भावभेदसे उसमें भेद बोध होता है। एक ही मछली जैसे नाना प्रकारके रस और मसाले देकर भूँजनेसे नाना प्रकारका स्वाद देती है; उसी प्रकार

भगवान् एक हैं पर साधक लोग उनका विभिन्न भावसे उपयोग करते हैं।

——:o:——

माया और ब्रह्म।

२२ प्रश्न—माया और ब्रह्ममें भेद कैसा है?

उत्तर—चलते सांपकी नाईं ब्रह्मकी अवस्था माया है और ठमके (स्थिर) साँपकी नाईं ब्रह्मकी अवस्था ब्रह्म है। तात्पर्य यह है कि ब्रह्मकी शक्तिका स्पन्दात्मक प्रकाश होना माया है और स्थिर होना ब्रह्म है।

(२३) जैसे समुद्रमें जल कभी स्थिर और कभी चपल होता है; वैसे ही ब्रह्म स्थिर और माया चपल है।

(२४) प्रश्न—ब्रह्म और उसकी शक्तिमें तादात्म्य (स्वरूपसंबन्ध) कैसा है?

उत्तर—जैसा अग्नि और उसकी दाहिका शक्तिमें है।

(२५) पञ्च भूतके फन्देमें पड़ कर अहो! ब्रह्म क्रन्दन कर रहा है।

(२६) किसी गुरुने दो अङ्गुलियां उठा कर शिष्यसे कहा—ब्रह्म और माया दो हैं पर पीछे उसने एक अङ्गुलीको झुका कर दूसरी अङ्गुली खड़ी रख के कहा—माया जानेसे ही जगत् ब्रह्ममय अनुभूत होता है।

(२७) क्या माया दृष्टिगोचर हो सकती है? एक बार देवर्षि नारदजीने भगवान्से प्रार्थना की कि भगवन्! आप मुझे

अपनी अघटितघटनापटीयसी मायाका दर्शन कराइये। परमेश्वरने कहा—अच्छा, दिखाऊँगा। इसके उपरान्त भगवान् कहीं घूमने निकले। थोड़ा दूर जानेपर भगवान्‌को प्यास लगी। पिपासातुर हो के नारायण नारदसे बोले—हे नारद! जहाँसे बने जल ला के मुझे पिलाओ। नारद तुरन्त जल ले आनेको गये पर आस पास उन्हें वहां कहीं जल न मिला। दूर जानेपर एक वहती नदी दृष्ट पड़ी। नदीके तट पहुंचनेपर नारदजीको एक असन्त सुन्दरी स्त्री बैठी दिखाई दी। उसका रूप देख के उसपर वे मोहित हो गये। उसके पास जानेपर वह (स्त्री) नारदजीसे चिकनी चुपड़ी बातें करने लगी। निदान थोड़ी ही देरमें दोनों परस्पर प्रेमबन्धनमें बंध गये। नारदजीने उसे ले के वहीं घर किया। सो उससे उन्हें कई लड़के हुये, जिनके पालनपोषणमें दत्तचित्त वे सुखसे पूरे गृहस्थ बन बैठे। एक समय वहाँ मरी फैली। सो जहाँ तहाँ लोग मरने लगे। अतः लड़के बालोंको ले के उस देशको छोड़ नारदजीने वहाँसे भागनेका विचार बांधा। उनकी स्त्री भी उस बातपर सम्मत हुई। तब वे दोनो अपने लड़के लड़कियोँको ले के निकले। मार्गमें एक सेतु मिला। उस पुलपरसे वे जाते थे कि उसी समय पुल टूटा। सो स्त्री पुत्र सब नदीमें गिर के मर गये। नारदजी दैवात् बच गये। कुटुम्बके शोकमें वे रोने लगे। भगवान् भी उसी समय वहाँ दर्शन दे के उनसे बोले—नारद! जल कहाँ है? तुम इतना रोते क्यों हो? नारद भगवान्‌को देख चकित हो उनका सब भेद जान के बोले—"भगवन्! आपको और आपकी मायाको प्रणाम करता हूँ।

(२८) परमहंसजीको भी एक वार परमेश्वरकी माया

देखनेकी इच्छा भई थी । सो उनने महामाया मातासे माया देखनेकी प्रार्थना की थी । मायाके देखनेकी प्रार्थना करते २ उनने एक दिन देखा कि एक छोटेसे विन्दुसे शनैः एक स्त्री बन गई और वह तुरन्त सयानी हुई । उसी समय उसके गर्भाधान हुआ और गर्भसे ज्यों बच्चा निकलने लगा त्यों वह स्त्री उस बच्चेको खाने लगी । यों वह वार २ बच्चा जनती थी और उसे खा जाती थी । यह देख के उनने जाना कि बस यही माया है ।

---:o:---

ब्रह्म वाणीसे प्रकाश नहीं किया जा सकता।

(२९) एक मनुष्यने परमहंसजीसे पूछा कि ब्रह्मदर्शनका बखान कीजिये । परमहंसदेवजीने कहा—" ब्रह्मदर्शनका वर्णन मुखसे नहीं किया जा सकता । जैसे कोई समुद्रके भीतर ग़ोता लगा के आवे और दूसरा उससे पूछे—" समुद्र कैसा है ? " तब वह पहिला (ग़ोता लगानेवाला) मनुष्य क्या कह सकता है ? वह केवल यही बोलेगा कि—समुद्र पानी है, पानी; वह पानी है । ब्रह्मदर्शन भी उसी प्रकार अकथनीय है ।

(३०) शास्त्रपाठीको ईश्वर सुझाना और जिसने मानचित्र नक़शे)में काशी देखी है उसे काशी बताना, दोनों एकसमान हैं ॥

(३१) वेद, तन्त्र, पुराण तथा अन्य २ धर्मपुस्तकें सब पुनः २ पिष्टपेषणमात्र करती हैं । क्योंकि मनुष्यके मुखसे वे वार २ दुहराई (आवृत्ति की) गई हैं । परंतु ब्रह्मका पिष्टपेषण

हुआ, ऐसा कभी नहीं कह सकते क्योंकि वह कभी किसीकी भी वाणीका विषय नहीं हुआ है ॥

---:o:---

सगुण और निर्गुण ब्रह्म।

(३२) जैसा मैं कभी नङ्गा रहता और कभी कपड़े पहिने रहता हूं, ब्रह्म भी उसी प्रकार कभी सगुण भाव और कभी निर्गुण भाव धारण करता है।

(३३) ईश्वर मानों चीनीका पहाड़ है और भक्त जन चींटी हैं। छोटी चींटी चीनीके पहाड़से चीनीके छोटे २ कणोंसे पेट भरती है और बडी चींटी बड़े २ कणोंसे परन्तु; पहाड़ जैसेका तैसा बना रहता है। उसी प्रकार भक्तगण होते हैं कि अपने २ अधिकारानुरूप सब भक्तिरस चख कर तृप्त होते हैं पर कोई भी ईश्वरका पूर्णभाव नहीं मिटा सकता है ॥

(३४) चीनीके पर्व्वतके समान अखण्ड सच्चिदानन्द नित्य विराजमान है। साधुभक्त लोग चींटियोंकी नाईं यथाशक्ति एक २ कण उसमेंसे ले कर भरपूर हो कर गमन कर रहे हैं। उनके बीच शुकदेव नारद आदि महा २ शक्तिमान् महात्मागण बड़े २ चींटोंके समान एक २ अपेक्षाकृत बृहत् कण उपलब्ध कर के परितृप्त हुए हैं। शेष अन्य २ साधारण जन एक २ छोटा कण ले कर तृप्त हुआ करें परन्तु अनादि अनन्त आनन्दमय अचल(पुरुष)के सम्पूर्ण आनन्दभावका पता लगा सके; ऐसा कौन शक्तिमान् पुरुष है ?

जीव और ईश्वर।

———:o:———

(३५) प्रश्न--जब परमेश्वर अनन्त है और जीव सान्त है; तब सान्त जीव अनन्त ईश्वरको कैसे उपलब्ध कर सकता है?

उत्तर—नमककी पुतलीकी नाईं जीव, समुद्रके सदृश परमेश्वरकी थाह लगाने जाता है। तिसका फल उसे यह मिलता है कि नमककी पुतलीतुल्य जीव, ईश्वर समुद्रमें गल घुल के लीन हो कर एकीभावको प्राप्त हो जाता है॥

———o———

जीवात्मा और परमात्माका सम्बन्ध।

(३६) जीवात्मा और परमात्माका भेद कैसा है? जैसे बहते जलमें लाठी वा तख़्ता डालनेसे जल विभक्त हो जाता है; तैसे ही मायारूपी उपाधिके कारण जीवात्मासे अखण्ड परमात्माका भेद भया है॥

(३७) मायाबद्ध जीव। मायामुक्त शिव॥

(३८) जैसे जल और जलका बुल्ला मूलमें दोनों एक हैं और बुल्ला जलहीमें उत्पन्न हो के जलहीमें रहता है तथा जलहीमें लय पाता है; तैसे ही परमात्मा और जीवात्मा दोनों एक अभिन्न हैं। भेद इतना ही है कि एक व्यापक है और अपर व्याप्य है; एक आश्रय है, अपर आश्रित है॥

(३९) जीवात्मा और परमात्मामें योगावस्थामें किस

प्रकारके रहते हैं? जैसे घड़ीकी छोटी और बड़ी सूई बारह बजे दोनों सट के एक हो जाती हैं; उसी प्रकार जीवात्मा परमात्मासे मिलनेपर एक हो जाता है॥

(४०) ईश्वर सब में है, पर सब ईश्वरमें नहीं हैं। इसीसे ईश्वरभावसे विरहित जीव दुःखभागी होता है॥

———:o:———

मनुष्य और ईश्वरका सम्बन्ध।

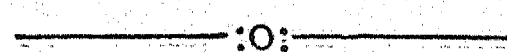
(४१) भगवान्से जीवका इतना निकट सम्बन्ध है, जितना चुम्बकसे लोहेका; परन्तु जीवका ईश्वरकी ओर आकर्षण क्यों नहीं होता; जानते हो? लोहेमें मोर्चा लगा रहता है तो उसे चुम्बक पत्थर नहीं खींचता। उसी प्रकारसे जीवमें मायापङ्क कलङ्क लगा है। उसीसे ईश्वर उसे अपनी ओर नहीं खींचता। लोहेका मोर्चा यदि जलसे रगड़ कर धो दिया जावे तो चुम्बक पत्थर उसे खींच लेवे। उसी प्रकार ईश्वरके प्रति निवेदनसे मायारूप पङ्क जब धुल जाता है, तब जीवको भगवान् अपनी ओर खींच लेता है॥

(४२) जैसे यात्रियोंके जहाज़में ध्रुवमत्स्यके चुम्बककी सूई सर्वदा उत्तरकी ओर रहती है। उससे दिशाके ज्ञानमें भूल नहीं होती; ऐसे ही मनुष्य जो ईश्वरकी ओर लगा रहे तो उसे किसी बातका खटका नहीं रहता॥

(४३) समुद्रके भीतर छिपी चुम्बक पत्थरकी चट्टान जैसे टक्कर खानेसे बलसे जहाज़के कील कांटोंको तोड़ फोड़

पटरी २ अलग कर उसे जलमें बोर देती है; तैसे ही चेतन आत्माका ज्ञानोदय, ग्रन्थिरूप अहंता, ममता तथा स्वार्थ-परताको क्षणभरमें नाश कर के टुकडे २ कर डालता और ईश्वरके प्रेमसागरमें जीवको मग्न कर देता है ॥

(४४) जैसे स्नेह (तैल) विना दीपक नहीं जलता, तैसे ही ईश्वरविरहित मनुष्य नहीं जीव सकता ॥



ईश्वरकी प्राप्तिकी विकलता ।

(४५) एक वार परमहंसजी बोले—जो भगवान्‌को चाहता है, वह उसे पाता है । न मानो तो बहुत नहीं, तीन दिन साधना कर के देखो ॥

(४६) जिसे चित्तकी एकाग्रता और भक्ति होती है, उसे ईश्वर शीघ्र मिल सकता है ॥

(४७) ईश्वरके अभिमुख हमारा कैसा मन होना चाहिये? जैसे सतीका मन पतिमें तत्पर और कृपणका रुपयेमें लगा रहता है ॥

(४८) पुत्र वा धन पानेनिमित्त मनुष्य कितना लोलुप है और सब लोचन २ भर रोते हैं परन्तु ईश्वरको पानेके लिये कितने जन लालायित हैं ! पर हां जो उसे चाहता है, वह अवश्य पाता है ॥

(४९) जैसे लड़के पैसा पानेके लिये मातासे आग्रह करते हैं; कभी २ मार भी खाते हैं और रोते हैं । यदि ईश्वरको

अत्यन्त अपना जान के उसे देखनेके लिये जो छोटे बच्चेके समान सोत्कण्ठ रोते हैं, उन्हें भगवान् अवश्य २ अपना दर्शन देता है॥

(५०) इस जन्ममें ईश्वरको प्राप्त करूँगा; तीन ही दिनमें प्राप्त करूंगा; एक वार नाम लेते ही ईश्वरको पाऊंगा; ऐसी उत्कट भक्ति परमहंसजीको भावती थी। धीमी भक्ति उन्हें नहीं सुहाती थी॥

(५१) क्या दान करनेसे ईश्वर मिलता है? तन मन और धन ये तीनों भगवदर्पण किये विना भगवान् नहीं मिल सकता है। जैसे जलमें डूबनेसे मन उभुक चुभुक करता है; वैसे ही भगवान्के लिये जब प्राण व्याकुल होगा, तब भगवान् मिलेगा।

———:o:———

ईश्वरानुसन्धान।

(५२) गङ्गाके किनारे कुछ स्त्रियां नहा रही थीं। पास ही कुछ पुरुष भी वहां घूम रहे थे। नहानेवाली स्त्रियोंमेंसे एकका स्वामी भी उन पुरुषोंके बीच टहल रहा था। एक स्त्रीने एक पुरुषकी ओर हाथ बढ़ा के उस स्त्रीसे कहा; क्या तेरा स्वामी यह है? उसने उत्तर दिया नहीं। इसी प्रकार पूर्व स्त्रीने दूसरे पुरुषकी ओर हाथ उठा कर पूछा; क्या तेरा स्वामी वह है? फिर उसने उत्तर दिया नहीं। यों पूछते २ अन्तमें जब केवल एक ही पुरुष शेष रह गया, तब उस पूछनेवाली स्त्रीने बल दे कर कहा कि यह पुरुष निश्चय तेरा पति है और

उस स्त्रीने उसकी उस बातको सुन के स्वीकारका चिन्ह लज्जासे अपनी गर्द्दन नीचे झुका ली । इसी प्रकार इस देहमें जिज्ञासा (तत्त्वविवेचन) करना चाहिए कि क्या चमड़ा, लोहू वा हड्डी आत्मा है ? भीतरसे उत्तर मिलेगा; नहीं २ । इसी प्रकार यह भी पूछना चाहिए कि क्या मन वा बुद्धि आत्मा है ? फिर भीतरसे उत्तर आवेगा; नहीं २ । निदान जहां पहुंच के यह " नहीं " शब्द समाप्त हो जाय, जानो वही आत्मा है ।

(५३) जो वस्तु जैसे यत्नसे मिलती है, उसके पानेनिमित्त वैसा यत्न करो, क्योंकि यदि वैसा न करोगे तो वह वस्तु क्यों कर प्राप्त हो सकेगी? देखो, दूधमें मक्खन है पर मक्खन २ बकनेसे मक्खन नहीं मिलता । हां, यदि मक्खन निकालना चाहो तो दूधका दही जमाओ और उसे मथो, तब मक्खन निकलेगा । ऐसे ही यदि ईश्वरको पाना चाहो तो जिस साधनसे ईश्वर मिलता है, उस साधनको करो । ईश्वर मिलेगा । ईश्वर २ चिल्लानेसे क्या इष्ट सिद्ध होता है ॥

(५४) भगवान्में तन्मय हो के निःशेष लयलीन हो जाओ अर्थात् ब्रह्मसागरमें मिल के एक हो जाओ ।

(५५) कीजिये ध्यान किनारे। क्या वनमें क्या मनमें ॥

(५६) ईश्वरको क्या ऊंचे स्वरसे पुकारना होता है? वह तो चींटीका भी शब्द सुनता है । तुम्हारी इच्छा उदय होते ही, उसे वह जान जाता है ॥

(५७) जो मुसल्मान अल्लाह २ चिल्लाता है, उसे जानो कि उसने ईश्वरको नहीं पाया; क्योंकि जो ईश्वरको पाता है, वह मुनि (चुप) हो जाता है ॥

(५८) प्रश्न—ईश्वर कहां है? वह कैसे मिलता है? उत्तर—जैसे समुद्रमें रत्न है, उसके पानेका उपाय करना चाहिये; तैसे ईश्वर संसारमें है; उसके प्राप्त्यर्थ साधन करना चाहिये।

(५९) समुद्रमें एक वार बुड़की मारनेसे यदि रत्न न पाओ तो उसे (समुद्रको) रत्नहीन न कहो। वार २ बुड़की मारते २ रत्न अवश्य मिलेगा। थोड़ी साधना कर के ईश्वरको न पा के मत बोलो कि ईश्वर न मिला और न निराश होओ। धीरज धर के साधन करते चलो। जब फल मिलनेका समय आवेगा, अवश्य २ ईश्वरकी कृपा होगी॥

(६०) ईश्वर कैसे मिलता है? जैसे लाल मूँड़की रोहू मछली पकड़नेके लिये बंसी फेंक के धीरज धर कर बैठ जोहना होता है; वैसे ही धीरज धर के साधन करना चाहिये॥

———:o:———

क्यों कर ईश्वर दृष्ट होवे।

(६१) यदि ईश्वर सर्वत्र है तो हम लोगोंको वह दीखता क्यों नहीं? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि काई पत्तोंसे ढँकी तलैयाके किनारे खड़े हो के तुम कहोगे क्या कि इस तालमें पानी नहीं है? हां, यदि जल देखना चाहो तो काई आदि हटा दो। ऐसे ही मायाका परदा पड़ जानेसे ईश्वर तुम्हे नहीं झलकता है। यदि ईश्वरको लखना चाहो तो मायाके जालको दूर करो॥

(६२) जैसे मेघसे सूर्य ढँक जाता है, तैसे ही मायासे

ढंका है । फिर जैसे मेघके हटनेपर सूर्य दिखाई देता है; वैसे ही मायाके हटनेपर ईश्वर दृष्टि पड़ता है ॥

(६३) पोखरेके मैले जलके भीतर मछली जैसे खेलती है; सच्चिदानन्द ईश्वर भी उसी प्रकार प्रत्येक जीवके अन्तःकरणमें क्रीड़ा कर रहा है ।

(६४) वासनाका लवलेश भी रहनेसे ईश्वर नहीं दिखाई देता । इसीसे छोटी मोटी वासना चाहे पूरी कर लो पर बड़ी २ वासनाओंको विचार कर के अभीसे दूर कर दो ॥

(६५) जैसे सूईके छेदमें सूतका रूँआँ अँटका हो तो उसमें डोरा नहीं घुसता; वैसे ही मनमें विषयवासना बनी रहनेसे भगवान् उसमें नहीं आता ।

(६६) सूईमें डोरा डालना हो तो डोरेका मुह सीधा पतला करो । मनको ईश्वरमें लगाना हो तो सब कुछ छोड़ छाड़ के दीन हीन निष्किञ्चन हो जाओ ॥

(६७) राजाके पास पहुंचनेके प्रयोजनसे सिपाही और पहरुएकी बड़ी चिरौरी करनी पड़ती है । परन्तु ईश्वरके पास पहुंचनेके नाना द्वार (उपाय) हैं । यथा नाना भांतिके भजन सत्संगति इत्यादि ईश्वरके पास पहुंचनेके लिये अपेक्षित हैं ।

(६८) भांग २ बोल कर चिल्लानेसे क्या भांगकी नशा चढ़ेगी ? कदापि नहीं । हां, यदि भांग पीस के पीओ तो नशा होगी । ऐसे ही खाली ईश्वर २ कह कर चिल्लानेसे क्या मिलेगा ? नियम बांध के साधन करो तो परम आनन्द प्राप्त होगा ।

(६९) स्त्री लोग जो भक्तिसे रो २ के वार २ प्रणाम करें, तब भी उनका एकाएक विश्वास नहीं करना चाहिये ।

(७०) सदसतके विचारको विवेक और स्त्री तथा सोना इत्यादि विषयकी भोगेच्छा दूर होनेको वैराग्य कहते हैं।

(७१) स्त्री और सोना न छोड़नेवालेको भगवद्दर्शन दुर्लभ है। लाज, घिन, और डरसे ईश्वर नहीं मिल सकता।

ईश्वरके नाम।

(७२) कलिकालमें ईश्वरका नाम ही मुक्तिका निष्केवल एकमात्र साधन है।

(७३) ईश्वरके देखनेका यदि अभिलाष हो तो नाममें विश्वास और पाप पुण्यका भेदविचार रख के चलना उचित है।

(७४) अमृतके तालाबमें चाहे जैसे गिर सको, गिरो; अमर हो जाओगे; वैसे ही चाहे जैसे भगवान्का नाम लो, उसका फल अवश्य २ लुनोगे॥

(७५) दीपकका यही कार्य है कि वह सबको प्रकाश दे। कोई चाहे उसपर भात पकावे, कोई चाहे उसके प्रकाशमें जालसाज़ी करे, कोई चाहे उससे श्रीमद्भागवत पढ़े; उसमें दीपकका गुण वा दोष नहीं है; ऐसे ही कोई भगवन्नाम ले के मुक्ति चाहता है और कोई चोरी ठगहारी करना चाहता है तो उसमें भगवान्का क्या दोष है॥

(७६) ज्ञान, अज्ञान, भूल वा अनभूलमें जिस प्रकारसे भगवन्नाम उच्चारण करोगे तिसका फल अवश्य मिलेगा। जैसे कोई तनमें तेल लगा के नहाये तो उसका भी स्नान, स्नान

है अथवा जिसे बरवश जलमें ढकेल दो, उसका भी भींगना स्नान है, और जिस सोते हुयेके तनपर पानी डालो, उसका भी स्नान, स्नान है । दुलर्भ मनुष्य शरीर पा के जो भगवान्‌को प्राप्त नहीं करता, उसका जीवन व्यर्थ है । जहां दश जन दण्डवत् करते हैं, वहां तुम लोग भी दण्डवत् करियो । उससे तुम्हारा भला होगा ।

---:o:---

किसने ईश्वरको देखा ?

(७७) रावणसे किसीने कहा था—तैं तो कामरूपी है अर्थात् सब रूप धर सकता है । रामका रूप धर के सीताके पास क्यों नहीं जाता ? रावण बोला—जब रामके रूपका स्मरण करता हूं, तब ब्रह्मपद भी तुच्छ बोध होता है। फिर परस्त्री-रति क्या ख़ाक है। "तुच्छं ब्रह्मपदं परवधूसङ्गः कुतः ।"

(७८) प्याज़का छिलका छुड़ाते २ अन्तमें प्याज़ कुछ शेष नहीं रह जाता; वैसे ही न इति २ कह कर संसारको ब्रह्मसे पृथक् करनेसे ब्रह्मको छोड़ और कुछ शेष नहीं रहता है । (तात्पर्य यह है; यह दृश्यमान जगत् कुछ नहीं है । केवल ब्रह्म ही ब्रह्म है ।)

(७९) कली ही मञ्जरी है । मञ्जरी ही कली है । ब्रह्म ही जगत् और जगत् ही ब्रह्म है ।

(८०) जीवन्मुक्तके मनमें भी एक प्रकारकी माया बनी रहती है । उससे वह जीवता है । पूर्ण ब्रह्मज्ञान होनेपर मनुष्य बहुधा एक्कीस दिनसे अधिक नहीं जीव सकता ।

(८१) सत्यज्ञानी मनुष्य वही है जो परमेश्वरको देख चुका है। वह लड़केकी नाईं हो जाता है। यद्यपि लड़केमें प्रतीत होता है कि सामान्य अहङ्कार है परन्तु वह उसका आभासमात्र है; स्वार्थपरता नहीं है। लड़कोंका अहङ्कार सामान्य मनुष्यके अहङ्कारकी नाईं नहीं है।

(८२) प्रश्न—क्या सब मनुष्य भगवान्का दर्शन पायेंगे?

उत्तर—हां जैसे कोई मनुष्य सर्वथा भूखा नहीं रहने पायेगा किन्तु कोई नौ बजे कोई दो बजे और कोई साँझको भोजन पाता है; वैसे ही किसी न किसी जन्ममें कभी न कभी सब ही ईश्वरका दर्शन पावेंगे॥

———:o;———

ईश्वर आप ही प्रकाश होता है।

(८३) एक प्रकारका लाण्टर्न होता है जिसे चोर पकड़नेका लाण्टर्न कहते हैं। उसे अपने मुखसम्मुख ल्याते ही तुरन्त औरकी जो सम्मुखास्थित हो मुखाकृति दृष्टि पड़ती है परन्तु उस पहरुएको अन्धेरेमें कोई नहीं देख सकता है। हां, यदि पहरुआ लाण्टर्नको अपनी ओर फेरे तो उसे सब कोई देख सकेगा। भगवान् भी इसी प्रकारसे सबको देखता है और उसे कोई नहीं देखता परन्तु यदि दया कर के वह अपनेको दिखावे तो लोग उसे देखें।

(८४) हम लोग आनन्दमयी माताको क्यों नहीं देख पाते। वह देवी बड़े कुलकी स्त्रीके सदृश है। जैसे भले वंशकी स्त्री चिकके भीतर सब काम करती हुई सबको देखती

है पर स्वयम् वह किसीको नहीं दिखाई देती; वैसे ही देवी भी सबको देखती है पर उसे कोई नहीं देखता । मायाके परदेको हटा कर केवल देवीके भक्तजन उसके पास जा के उसे देखते हैं ॥

(८५) कल्पना करो कि एक माताके पांच पुत्र हैं। सो वह किसीको काठकी चटनी, किसीको पुतली, और किसी-को मिठाई दे के लुभा बहला कर अपने कार्यको सुचिताईसे करती है। सत्य है परन्तु जो बालक खिलौना इत्यादि सब फेंक के मा २ कर के रोता है, उसे मा गोदमें ले के चुमकारती हुई चुप कराती है। हे प्राणियो ! तुम भी अन्य पदार्थोंमें भूले हो। यह सब फेंक कर के जो तुम अश्रुपात कर ईश्वरके लिये तलफोगे तो वह तुम्हें अपने अङ्कमें लेगा ॥

---:o:---

ईश्वर भक्तिसे प्रदत्त छोटेसे छोटे दान-को भी ग्रहण करता है।

(८६) ज़मींदार चाहे कितना भी धनी हो पर प्रजा उसे जो कुछ साधारण वस्तु भी उपहार देती है, वह प्रेमसे ले लेता है; उसी प्रकार ईश्वर महान् हो के भी मनुष्योंका पूजोपहार आदरके साथ ग्रहण करता है।

(८७) चाहे मछली कितना ही दूर रहे पर चारु चारा देख के झट पास चली ही तो आती है; भगवान् भी उसी प्रकारसे विश्वासी भक्तके मनमें शीघ्र आ के उपस्थित होता है।

मनुष्यके हृदयमें ईश्वरका आगमन।

——:o:——

(८८) मनमें भगवान्के आगमनकी क्या पहिचान है? जैसे सूर्योदयके पूर्व गगनमें ललाई छा जाती है।

(८९) जैसे राजा किसी नौकरके घरपर जानेको होता है तो पहिलेसे अपने घरकी साज सामग्री और अपने बैठनेके उपयुक्त बिछौने तथा भोजन इत्यादि भेज देता है; तैसे ही भगवान् अपने आगमनके पहिले अपनी सब वस्तु इकट्ठी कर के पहिलेसे भक्तके घटमें भेज देता है अर्थात् साधकके हृदयमें पहिले प्रेम, भक्ति, विश्वास और उत्कण्ठाका प्रादुर्भाव कर देता है।

——:o:——

ईश्वरदर्शन।

(९०) जब ईश्वर लख पड़ता है तब भक्तजनके हृदयकी कैसी दशा हो जाती है ? जब ईश्वरकी ज्योति झलकती है, तब उसकी झाँकी पानेवालेका हृदय सुस्थिर हो जाता है। हृदयरूप नदी जबतक कामनारूप पवनसे हलकोरे लेती रहती है तबलों ईश्वर नहीं दिखाई देता।

(९१) जैसे एकमात्र पतिकी सेवामें सदा तत्पर रहनेसे पतिव्रताको पातिव्रत धर्म मिलता है; ऐसे ही एकमात्र ईश्वरमें अटल विश्वास रखनेसे ईश्वर मिलता है।

(९२) ईश्वरका दर्शन तब प्राप्त होता है जब मनुष्य निम्नलिखित तीनों अवस्थाओंको पक्का पहुँचे। (१) जो कुछ है, सो सब हम ही हैं। (२) जो कुछ है, सो सब तूं ही है। (३) तू प्रभु है, मैं तो तेरा दास हूं, इति।

——:o:——

जिसने ईश्वरको देखा, वह अनर्थ नहीं मचाता।

(९३) लोहेकी तलवार पारस पत्थरके स्पर्शसे सोनेकी तलवार होनेपर यद्यपि अपना रूप और आकृति नहीं बदले तथापि वह किसीका गला घोंटनेवाली नहीं होती है; ऐसे ही ईश्वरके शरणागत होनेपर मनुष्यका आकार न बदले कुछ चिन्ता नहीं; पर वह हत्यारा नहीं होता है॥

(९४) हाटसे कुछ दूर चले जानेपर उसके भीतर का, हो हा शब्द सुनाई पड़ता है। उसके भीतर घुसे हुएको कोलाहल नहीं सुनाई देता है किन्तु लोगोंकी बोलचाल स्पष्ट सुननेमें आती है कि कोई आलू और कोई परवल मोल लेता है। ऐसे ही ईश्वरसे दूर हटे रहनेपर मनुष्य तर्क वितर्क और युक्तियोंके फन्दोंमें फंसा रह कर वाद विवाद करता है; पर ईश्वरके समीप पहुंचनेपर वह किसी टण्टे बखेड़ेमें नहीं पड़ता क्योंकि उसे वहां सब भेद स्पष्ट २ दृष्ट पड़ता है।

——:*:——

ईश्वरद्रष्टाको कोई पार्थिवविषयासक्त नहीं कर सकता है।

—:o:—

(९५) जैसे आंखमिचौलीके खेलमें खूँटा चूमनेवाला फिर चोर नहीं माना जाता है; वैसे ही ईश्वरलों पहुँचनेपर जीव फिर संसारके बन्धनमें नहीं बँधता है। और जैसे खूँटा छू लेनेवाला स्वेच्छानुसार चाहे जहां जाय, चोर नहीं कहा जाता; तैसे ही ईश्वरके शरणापन्न होनेपर जीवको संसारमें किसीका भय नहीं रहता है। फलतः जिन्होंने ईश्वरको पाया, उन्हें फिर संसारमें किसी अवस्थामें भी कुछ जोखिम नहीं रहता क्योंकि उन्हें कोई किसी भांतिसे बांध नहीं सकता है।

(९६) दूधमें जल डालनेसे दूध और जल दोनों मिल के एक हो जाते हैं। सत्य है परन्तु दूधका मक्खन हो जानेपर वह जलमें घुलता नहीं; इसी प्रकार ईश्वरके भाव प्राप्त होनेपर भगवज्जन सहस्रों बद्ध जीवोंके सङ्ग रहे तो भी उसको भवबन्धन नहीं व्यापेगा।

(९७) लोहा एक वार जब पारस पत्थरके स्पर्शसे सोना हो जाता है, तब चाहे उसे पृथ्वीमें गाड़ो, चाहे कूड़ेमें फेंको पर वह सोनेका सोना ही बना रहता है; ऐसे ही जो ईश्वरके शरणागत हैं, वे भी उक्तविध होते हैं। चाहे वे वनमें रहें, चाहे घरमें, पर उनके मनमें दाग नहीं लगता।

(९८) जो ईश्वरको जानता है; वह पार्थिव सुखोंकी ओर उदासीन रहता है। जिसने ओला वा मिश्री चक्खी है,

वह क्या चोटा (राब) खाने चाहेगा । जो एक वार सुथरे ति-महलेपर सोया, वह क्या मैले भूतलपर सोना चाहेगा, ऐसे ही जो ब्रह्मानन्दभागी होता है, वह क्या विषयसुखमें मतवाला होताहै ?

(९९) जो राजाका मित्र है, उसे साधारण प्रजाके साथ मैत्री करनेसे क्या सुख लाभ होगा ? ऐसे ही जिसे भगवान् प्राप्त है, उसका मन फिर तुच्छ संसारी वस्तुपर नहीं दौड़ता है।

(१००) गृहस्थिनी जैसे सदा संसारी नाना कामधन्धेमें फँसी रहती है पर बच्चा जनतीवेला उसे झख मार सब कामकाज छोड़ देने पड़ते हैं, और जनने उपरान्त भी उसे दूसरे कार्य नहीं सुझाते किन्तु उस समम वह रात दिन केवल अपने बच्चेको पालती पोषती और उसका मुह चूमती सुखी होती है; तैसे जीव भी अविद्यावश नाना कार्य किया करता है किन्तु ईश्वरका दर्शन पानेपर फिर उसे अन्य कार्य नहीं भावते हैं । तब तो वह ईश्वरानुकूल कार्य और सेवाको त्याग अन्य कार्योंमें कदापि चैन नहीं पाता, यहांतक कि क्षणभर भी वह ईश्वरसम्बन्धी कार्यसे अवसर (अवकाश) लेना नहीं चाहता है ।

(१०१) जो मिश्रीका रस चखता है, उसे क्या चोटे-(राब)का शर्बत कभी अच्छा लगेगा ?

———:o:———

ईश्वरविषयक ज्ञान और ईश्वरकी भक्ति ।

(१०२) विशुद्ध ज्ञान और शुद्ध भक्ति दोनो एक ही बात है ।

(१०३) ज्ञान पुरुष (नर) है और भक्ति प्रकृति (नारी) है । ईश्वरके बाहिरी घरतक ज्ञानका प्रवेश हो सकता है पर उसके अन्तःपुरमें भक्ति महारानीको छोड़ अन्य कोई नहीं जा सकता ॥

(१०४) शक्ति न रहनेसे केवल शिवसे कुछ कार्य नहीं होता। कैसे ? जैसे केवल मिट्टीसे कोई कुछ गढ़ नहीं सकता, किन्तु पानी चाहिए, तब गढ़ा जा सकता है ।

मूर्त्तिपूजन ।

(१०५) जैसा ईशमूका बना शरीफ़ा और मिट्टीका बना हाथी देख के सच्चे सीताफल और हाथीका ज्ञान होता है; तैसे ही ईश्वरकी प्रतिमा देख के ईश्वरकी भावना होती है ।

(१०६) किसी समयमें स्वामीने केशवचन्द्रसेनसे कहा; मूर्ति देख के तुम्हें मिट्टी और भूसेका स्मरण क्यों आता है ? सच्चिदानन्दमयी माताका ध्यान क्यों नहीं आता ?

(१०७) देव देवियोंकी मूर्ति देख के जो देवतानुभव-भाव हृदयमें ल्याते हैं, उन्हीको दिव्यदर्शन होगा परन्तु मूर्त्ति-को देखके जो यह मिट्टी भूसा वा पत्थरमात्र है, इत्याकारक भाव अपने मनमें ल्याता है, उसके पक्षमें मूर्त्तिपूजन किसी सिद्धिका साधक नहीं होता है ।

—:※:—

सबमें ईश्वर है ।

(१०८) सब जलमें नारायण हैं पर सब जल पिया

नहीं जाता; यों ही सर्वत्र नारायण हैं पर हम सर्वत्र न जावें। जैसे एक जलसे पाँव धोते हैं, एकसे नहाते हैं, एकको पीते हैं और एकको बिलकुल छूते भी नहीं; ऐसे ही भिन्न २ प्रकारके स्थान भी हैं। किसी स्थानमें हम जा सकते हैं, किसीके भीतर घुस सकते हैं और किसीको दूरहीसे प्रणाम कर के भागना होता है।

(१०९) सत्य है कि बाघमें भी ईश्वर है पर बाघके सामने न जाना चाहिये। ऐसे ही सत्य है कि खोटोंमें भी ईश्वर है पर खोटोंका सङ्ग खोटा है।

(११०) गुरुजो बोले—जो कुछ है, सब ईश्वर है। शिष्यने जाना सचमुच सब ईश्वर ही है। दैवात् मार्गमें एक हाथी आता था। उसपर महावत चढ़ा कहता था हटो २। शिष्यने विचारा—हम क्यों हटें? हम भी ईश्वर, हाथी भी ईश्वर; ईश्वरसे ईश्वरको डर कैसा? निदान वह नहीं हटा। सो हाथीने उसे सूंड़से उठा के दूर फेंक दिया; उससे उसे बड़ी चोट लगी। उसने सब वृत्तान्त गुरुसे कह सुनाया। गुरु बोले—हां, तुम भी ईश्वर हो, हाथी भी ईश्वर है परन्तु हाथीके ऊपर बैठा नारायणरूप महावत तो तुम्हें हटने कहता था; तुम उसके कहनेसे क्यों न हट गये?।

(१११) ईश्वर हम लोगोंको भोजन देता है; इतनेमात्रसे भी यद्यपि ईश्वरको दयावान् कह सकते हैं तो भी जैसे पिताका धर्म्म है कि न केवल अपने पुत्रको भोजन देवे किन्तु वह उसे कुपथगमे बचावे ऐसे ही ईश्वर हम सभोंको जो लोभादिसे बचाता है, उसीसे उसको हम सब कृपालु बोलते हैं।

मनुष्यकी मुक्ति।

---:o:---

(११२) कीचड़ पोतना लड़केका स्वाभाविक है परन्तु माता उस कींचड़को धो डालती है। रहने नहीं देती। इसी प्रकारसे मनुष्य कितना ही पाप करे परन्तु ईश्वर अवश्य २ उसके लिये उद्धारका मार्ग प्रस्तुत करता ही है।

(११३) अंधेरी कोठरीमें चाहे सहस्रों वर्ष पीछे दीपक बाला जावे पर उसमें भी प्रकाश व्यापते विलम्ब न होगा; उसी प्रकार ईश्वरकी दयादृष्टिरूपी दीप दीप्त होते ही सहस्रों जन्मके पापान्धकार को दूर कर देता है।

---:o:---

मनुष्यके अभ्यन्तर ईश्वर।

(११४) रामकृष्ण परमहंसजी बहुधा अपने हृदयपर अङ्गुलि रख कर कहा करते थे-"जिसका यहां है, उसका वहां भी है" अर्थात् जो मनुष्य अपने भीतर २ ईश्वरको नहीं पाता वह अपने बाहिर भी उसे नहीं पावेगा और जो पुरुष ईश्वर-को अपने हृदयरूपी मन्दिरमें पाता है, वह पुरुष इस ब्रह्माण्ड-रूपी मन्दिरमें भी उसे पा सकता है।

(११५) परमहंसजीने किसीसे कहा था-" हम जितना करनेको कहते हैं, उतना तुम लोगोंसे हो सकेगा? यदि हमारी बातके सोलह आनेमेंसे एक आना भी करो तो बस है।

(११६) माता ! मेरे सब अहङ्कारको नाश कर। मैं ब्राह्मण हूं और दूसरा चाण्डाल है; मेरे इस भेदज्ञानको दूर कर क्योंकि वे भी तो तेरे ही मूर्त्तिभेद हैं जो भिन्न २ देहसे आविर्भूत हुए हैं ।



मुक्तिदाता, महात्मा और गुरु मुक्तिदाता ईश्वरके प्रेरित होते हैं।

(११७) अवतार ईश्वरका कर्मचारी है । जैसे ज़मींदारके अधिकारके भीतर जो प्रदेश हैं, उनमें कोई गड़बड़ होनेसे वह अपने कार्याध्यक्षको प्रबन्धके लिये वहां भेजता है; वैसे ही जगत्में कहीं धर्मलोप होता दीखता है तो वहां अवतार भेजा जाता है ।

(११८) एकही अवतार डुबकी मार के यहां कृष्ण हो के आया और वही अन्यत्र यीशु हो के जा कर उतिराया है ।

(११९) प्रश्न—निर्गुण ब्रह्म और रामकृष्णादि रूपमें कैसा अन्तर है ? उत्तर—जैसे समुद्र और उसके तरङ्गमें अन्तर है ।

(१२०) जब श्रीरामचन्द्रने अवतार लिया था, उस समय केवल सप्तर्षि ही उन्हें चीन्ह सके । तैसे ही जब भगवान् अवतार लेते हैं, तब सबका काम नहीं है कि उन्हें चीन्ह सके ।

(१२१) कोई नहीं जानता कि ईश्वर जब अवतारमें रूप धारण करता है तब अपनी महिमाका वह कितना बलिप्रदान करता है ।

भुक्तिदाताओंकी मुक्ति देनेकी शक्ति ।

——:*:——

(१२२) अन्य २ समयमें कूआं खोदनेसे उससे पानी मिलता है परन्तु जलप्लावन होनेसे जहां तहां आप ही आप पानी प्राप्त होता है; तैसे ही न्यारे समयोंमें बहुत क्लेशसे साधन भजन करनेसे लाभ होता है परन्तु जब अवतार आता है तब उससे ईश्वरका दर्शन जहां तहां मिलता है ।

(१२३) अवतारका आना क्या है? मानो जलप्लावन होना है। जलप्लावनमें मकानके आसपास आकण्ठ पानी भरा रहता है। तात्पर्य यह है कि जलप्लावन होनेसे जैसा मकानके आसपास पानी आप ही आप आता है, वैसे ही अवतार होनेसे मुक्ति सहजमें प्राप्त होती है ।

(१२४) रेलका एञ्जिन जैसे सहजमें (अनायास) भारी बोझोंसे लदी गाड़ियां खींच ले जाता है; तैसे ही पापी संसारी मनुष्योंको अवतारी पुरुष ईश्वरके पास पहुंचाता है ।

——:o:——

मुक्तिदाता बहुतेरे हैं ।

(१२५) ज्योतिःस्वरूप बृक्षके फलगुच्छकके राम और कृष्ण एक२ फल हैं । उनमेंसे एक२ आ के न जाने कितनी लीला कर जाते हैं ।

(१२६) श्रीकृष्ण श्रीराधा और अर्जुनादिकी कथा ऐतिहासिकतामें किसी२ अंशमें सत्य नहीं है। कचित् केवल रूपकसे

वर्णनामात्र है । शास्त्रोंमें केवल आध्यात्मिक भावसे वे कथा कही गई हैं । उनके यथाश्रुत अक्षरार्थका समर्थन शास्त्रकार नहीं करते ।

(१२७) जैसा होमानाम पक्षी सूनेहीमें अण्डे जनती है और अन्तरिक्षहीमें उसका अण्डा फूटता है। उससे उसके बच्चे निकल के अन्तरिक्षमें उड़ जाते हैं और वे पृथ्वीपर कभी नहीं आते; ऐसे ही नित्यसिद्ध लोगोंकी भी किंवदन्ती है ।

(१२८) जैसे हाथीके दांत खानेके और, और दिखानेके और होते हैं; वैसे ही अवतारोंका दो भाव होता है । साधारण मनुष्यके लिये साधारण भाव होता है पर उनकी वास्तव चित्तवृत्ति कर्मकाण्डसे बाह्य अर्थात् निर्लिप्त होती है ।

(१२९) प्रश्न—यीशु मसीहके विरोधियोंने उसके शरीरमें खीले ठोंके पर उसने उनकी मङ्गलप्रार्थना की; अहो! यह क्या बात है ?

उत्तर—कच्चे नारियलके फलमें कांटा गोदो तो वह गूदेतक धंस जाता है पर पक्के नारियलके फलमें ऊपरी छिलकेसे खोपड़ेमेंकी गरी अलग हुई रहती है । यीशु भी पक्के नारियलके फलके तुल्य है। उसका आत्मा देहसे अलग था । इससे उसे खीले नहीं गड़े और न कष्ट हुआ । यही कारण है कि वह प्रेमसे शत्रुओंके निमित्त भी मङ्गलप्रार्थना करता रहा ।

———:o:———

अवतार और सिद्ध पुरुष ।

(१३०) परमहंसदेव कहा करते थे कि मनुष्योंकी प्रकृति

दो भाँतिकी पाई जाती है । प्रथम प्रकृतिका उदाहरण यह है—किसी गुरुने शिष्यको उपदेश दे कर कहा—बेटे! यह अमूल्य रत्न गोपनीय है । इसका भेद किसीसे प्रकट न कीजियो। यह सुन वह शिष्य चुप रहा । दूसरे स्वभावका दूसरा शिष्य भी वहां उपस्थित था । वह गुरुकी उस बातको सुन कर और कुछ न बोला किन्तु घरके छज्जेके ऊपर चढ़ कर ऊँचे स्वरसे चिल्ला २ कर कहने लगा—"जिसको अमूल्य रत्न लेना हो; सो यहां आये"।

(१३१) जैसे एक बड़ा वेगगामी धूआंकश जहाज़ शीघ्रतासे छोटी २ नौकाओंको खींचता चला जाता है; तैसे ही अवतार होनेपर वह सहस्रों संसारी मनुष्योंको अपने साथ ले जाता है ॥

(१३२) जब बूड़ा (जलप्लाव) आता है तब नदी नाले सब भर जाते हैं और आसपासकी सब भूमि जलमयी हो जाती है पर वर्षाका जल बँधी नहर इत्यादिमें हो के बहता है; ऐसे ही जब अवतार होता है तब उसकी दयासे सब तर जाते हैं । केवल सिद्ध लोग अपनी कठिन तपस्याके बलसे ईश्वरको पाते हैं ॥

(१३३) सिद्धपुरुष क्या है ? मानो पटा हुआ कूआं है, जिसे यत्न कर के उद्घाटित करना पड़ता है पर अवतार कैसा है ? जैसा कूआं जहां नहीं है, वहां कूआं खोदना ।

(१३४) बड़ी भारी शहतीर जो पानीपर उतराती है, उसपर यदि बहुतसे मनुष्य बैठ जायं तौ भी वह नहीं डूबती है पर कोई छोटा मोटा दण्डा छोड़ दो तो वह कौएके बोझसे भी डूब जायगा; यों ही जब अवतार होता है तब उसके आ-

श्रयसे कितने तर जाते हैं पर सिद्धपुरुष आप अपने बड़े श्रम और कष्टसे पार पाता है ॥

(१३५) सिद्धपुरुषकी प्रकृति कैसी होती है? जैसे आलू भांटे पककर कोमल हो जाते हैं; तैसे ही सिद्धजन भी मृदु-चित्त होते हैं ॥

———:o:———

सिद्धपुरुष कितने प्रकारके होते हैं ?

(१३६) संसारमें सिद्धपुरुष चार प्रकारके मिलते हैं। एक (१) स्वप्नसिद्ध, दूसरे (२) मन्त्रसिद्ध, तीसरे (३) आकस्मिक-सिद्ध और चौथे (४) नित्यसिद्ध*। जैसे अचानक कोई दीन नर धरतीमें गड़ा अथवा अन्य किसी प्रकारसे धन पा के धनवान् हो जाता है; तैसे ही कोई२ पापी मनुष्य अकस्मात् पवित्र हो के ईश्वरके राज्यमें प्रवेश पाते हैं। यथा लालाबाबू इत्यादि आकस्मिक सिद्ध हो गये हैं ॥

(१३७) प्रश्न—जीवको जो यह ज्ञान होता है कि मैं ब्रह्म हूँ; सो क्या कभी हो सकता है ? यदि हो सकता है तो सोऽहम् यह वृत्ति कैसी ?। उत्तर—जैसे गृहस्थके घरके पुराने

---

* पांचवें प्रकारके एक कृपासिद्ध भी होते हैं। जैसे राजाका कृपापात्र हो के दीन हीन पुरुष भी सम्पन्न हो जाता है; तैसे ही ईश्वरकी दयासे कोई २ लोग कृपासिद्ध हो जाते हैं ॥

(१) जो स्वप्नदर्शनमें अनुभव प्राप्त कर के सिद्ध होते हैं; उन्हें स्वप्नसिद्ध कहते हैं ॥

(२) जो किसी मन्त्रविशेषको सिद्ध कर के सिद्ध होते हैं, उन्हें मन्त्रसिद्ध कहते हैं ॥

(३) इस प्रकारके सिद्धको दैवासिद्ध भी कहते हैं ॥

(४) जो स्वतः सदा सिद्धिसे पूर्ण बने रहते हैं, वे नित्यसिद्ध (आजानसिद्ध) हैं ॥

नौकर निज परिवारके समान हो जाते हैं और किसी दिन किसी नौकरका कोई प्रशंसनीय कार्य देख के उसका स्वामी हाथ पकड़ गद्दीपर बैठा के सबसे कह देता है कि 'आजसे इससे मुझमें भेद न मानियो किन्तु जानियो कि जो यह है, वही मैं हूँ । इसकी आज्ञा मेरी आज्ञाके समान समझ सब कोई मानो । जो इसकी आज्ञा न मानेगा, वह दण्डभागी होगा' । यह सुन प्रेमसे इतनी प्रतिष्ठा प्राप्त कर के नौकर लजाया परन्तु स्वामीने उसे बलसे अपनी गद्दीपर बैठा लिया । जीवकी सोऽहम् इत्याकारक वृत्ति भी वैसी ही होती है । तात्पर्य यह है कि चिरकाल भगवान्‌की सेवासे भगवान् प्रसन्न हो के किसी२को अपने समान सामर्थ्य विभूति दे के अपने सिंहासनपर आप बैठा देते हैं ।

---o---

महात्मा ।

(१३८) ईश्वरकोटि अन्तर्मुख और जीवकोटि बहिर्मुख होती है अर्थात् ईश्वरकोटिके लोग अवतारी शरीरमें शरीर धारण कर के आते हैं और अवतारीकी लीला हो चुकनेपर उसीके साथ वे चले जाते हैं । उनकी न कभी मुक्ति होती है और न कभी वे बद्ध होते हैं । ये लोग अवतारके अन्तर्मुख होते हैं और जीवकोटीमें जो हैं, वे साधन भजन कर के ईश्वरको लाभ करते हैं पर बहिर्मुख होते हैं ।

(१३९) साधुको साधु ही चीन्ह सकता है । जो सूतका काम करता है, वही कह सकता है कि कौन सूत किस दरज़ेका है ।

(१४०) एक साधु पुरुष सड़कके किनारे समाधि लगाये पड़ा था। कोई चोर उसी ओरसे उसी समय जाता था। साधुको देख के वह अपने मनमें कहने लगा कि यह भी चोर है। रातको चोरी कर के इस समय यहां पड़ा है। अभी पुलिस आ के इसे पकड़ेगी; चलो हम भागें। मद्यमें माते किसी दूसरे मनुष्यने उसे देख के कहा कि यह रात्रिमें मद्य पी के पनारेमें गिरा पड़ा है। मैं बाबा! मैं तो नहीं गिरता हूं। अन्तमें एक साधुने आ के देख कर जाना कि यह कोई भारी साधु समाधि लगाये है। सो वह उसके चरणकी सेवा करने लगा।

---:o:---

पूरे (परमेश्वरको पहुँचे) मनुष्य पार्थिव विषयोंसे निर्लिप्त होते हैं।

(१४१) प्रश्न—संसारमें रह के जो उससे निर्लिप्त हैं ऐसे; और जो लिप्त संसारी हैं, वे कैसे होते हैं? उत्तर—जैसे कमलके पत्ते जलमें लगे रहते हैं और मछली कीचड़में रहती है।

(१४२) पनडुब्बी (एक प्रकारकी पक्षिजाति) पानीमें रहती है परन्तु उसके देहमें जलका लेश भी नहीं लगता; ऐसे ही मुक्त पुरुष भी संसारमें वास करते हैं परन्तु संसारसे निर्लिप्त रहते हैं।

(१४३) देखो हंसकी चोंचमें कैसा लासा है कि जिसकी लसीसे वह दूधमें मिले जलको छोड़ कर केवल दूधको चाट लेता है। दूसरे किसी पक्षीसे यह नहीं हो सकता; वैसे ही ईश्वर भी

मायासे ढँका है। मायाका परदा हटा के दूसरा कोई उसे नहीं देख सकता। केवल परमहंस ही माया छोड़ ईश्वरको ग्रहण करते हैं।

---:o:---

महात्माओंमें अहंकारकी छाया-मात्र रहती है।

(१४४) श्रीहनुमान्जीको साकार और निराकार ईश्वरका दर्शन हुआ था पर उनने तब भी दास्यभावहीको अङ्गीकार किया; सनक सनन्दन सनातन और सनत्कुमारका भी यही बर्ताव था।

(१४५) रस्सी जल जाती है पर उसकी ऐंठ बनी रहती है तो भी वह बांधनेका कार्य नहीं दे सकती है; यही दृष्टान्त महात्माके अहंकारका भी है।

(१४६) बकरेका शिर काटनेपर उसका शरीर छिनेक छटपट २ करता है, उससे द्योतित होता है कि उसका प्राण निकल जा के भी तबतक कुछ रह जाता है। जीवन्मुक्त जिस अहङ्कारसे पृथ्वीपर पर्यटन करते हैं, वह उसी प्रकारका है पर उन्हें कामिनी नहीं बझा सकती।

(१४७) प्रश्न—मुक्त पुरुषमें क्या माया रहती है?

उत्तर—पक्के सोनेसे कोई गहना नहीं गढ़ाया जा सकता है। उसमें थोड़ा खाद (अन्य धातु) मिलाना होता है; उसी प्रकार मायारहितका देह नहीं ठहरता। देह रहनेसे जाना जाता है कि थोड़ी बारी माया रही ही है।

पहुँचे हुए मनुष्यके द्वारा प्रचार ।

———:o:———

(१४८) आग देख के क्या जाने कहांसे पांखी आ के उसमें गिर के जल मरती है। आग कभी पांखीको बुलाता नहीं। जीवन्मुक्तजनकर्त्तृक प्रचार भी उसी प्रकारका होता है। वे किसीको बुलाने नहीं जाते पर सैकड़ों मनुष्य न जाने कहांसे आ के उनसे शिक्षित होते हैं॥

(१४९) मिठाईका चूर गिरा रहता है तो गन्ध पा के चींटियां आप ही आप आ के जुडती हैं। अतः आप मिठाई-के चूरसरीखा बननेका यत्न करो। चींटियां आप एकत्र हो जावेंगी।

(१५०) परमहंसजीने एक हिन्दुधर्ममतप्रचारकसे पूछा-क्या तुमने चपरास पाई है? उसने पूछा—चपरास किसको कहते हैं, महाशय!? परहंसजीने कहा कि जैसे साधारण पुरुषको भी चपरासी देख के प्रजागण उसका आदर करते हैं; वैसे ही तुमने ईश्वरकी नौकरी कर के आदरार्थ क्या चपरास (अर्थात् आदेश) पाई है! वह मनुष्य बोला—जी नहीं। तब परमहंसजीने—कहा तब तो तुम्हारी कही बात कोई न मानेगा। क्यों व्यर्थ बकवाद करते हो।

(१५१) प्रश्न—सच्चे प्रचारकी क्या पारिपाटी है?

उत्तर—भजन करो २, यों वचनसे मनुष्योंको उपदेश देनेकी अपेक्षा आप भजन कर दिखलाना सच्चे प्रचारको परिपाटी है। जो यथार्थ अपनी मुक्ति चाहता है, वही ठीक प्रचारक

हो सकता है क्योंकि जो जीवन्मुक्त होते हैं, उनसे सहस्रों जन विना वाग्व्यय उदाहरणमात्रसे स्वतः शिक्षा पाते हैं।

(१५२) कच्चा मैदा तप्त घृतमें डालनेसे पहिले फड़फड़ाता है पर जितना भुंजता जाता है उतना शब्द कम करता है। भुँज जानेपर उससे कुछ भी शब्द नहीं होता। थोड़ा ज्ञान पानेसे मनुष्य व्याख्यान देनेकाआडम्बर बढ़ाता है पर पूरा ज्ञान होनेपर वह वाग्जाल नहीं फैलाता।

———:o:———

जो पहुँचे नहीं हैं, उनसे प्रचार।

(१५३) प्रश्न—जो ज्ञानकथनी तो बहुत सुना सकता है पर अपने जीवनको बड़ा बिगाड़ रक्खे है, उसे आप लोग क्या समझते हैं? उत्तर—हां दूसरेको तो वह शीघ्र उपदेश देता है पर अपना उपार्जित धर्मधन गवां बैठता है।

(१५४) सांसारिक लाभकी आशासे मनुष्य अनेक धर्म करते हैं पर क्लेश, दुःख, दारिद्र्य और मृत्युकी दशा आनेपर उनका सब जाता रहता है; कैसे? जैसे तोता दिनभर राधाकृष्ण २ करता है पर बिल्लीसे पकड़े जानेपर उसे भूल के केवल टें २ करता है।

(१५५) प्रश्न—आजकाल जिस ढङ्गसे धर्ममतका प्रचार होता है, उसे आप कैसा समझते हैं। उत्तर—जैसे न्योता तो सौ जनको देना पर एकहीके लिये भोजनसामग्री जुहाना। तात्पर्य यह है कि उपदेशक थोड़ी साधना कर के गुरुआई करने लगते हैं।

(१५६) इस संसारमें बहुतेरे मनुष्य ऐसे होंगे जिन्होंने पालेका नाम सुना होगा पर उसे देखा न होगा। धर्मशिक्षक भी वैसे अनेक हैं जिन्होंने ईश्वरकी चर्चा तत्त्वशास्त्रमें केवल पढ़ी ही है पर जीवनमें ईश्वरका साक्षात्कार (प्रत्यक्ष अनुभव) नहीं पाया है। और बहुतसे ऐसे निकलेंगे जिन्होंने पाला देखा भी है पर उसे खाया नहीं है; ऐसे ही अनेक धर्मोपदेशक हैं जिन्होंने ईश्वरकी केवल छाया ही पाई है पर सत्य २ उसका निरूपण नहीं कर सके कि ईश्वर क्या है ? जिसने पाला चक्खा होगा, वही उसका रस वर्णन कर सकता है; ऐसे ही जो शान्तिपूर्वक सेवकभावसे ईश्वरकी सेवा करते हैं, वे उसका माहात्म्य कथन कर सकते हैं।

———:o:———

सब शिक्षाओंका मूलकारण ईश्वर है।

(१५७) जैसे गैसकी रोशनी नाना स्थानोंमें नाना प्रकारसे पड़ती है पर आधार उसका एक ही रहता है; तैसे ही सब देशोंका प्रत्येक धार्मिक जन एक ईश्वरहीसे आता है।

(१५८) घरके छत्तका जल सिंहमुखाकार पनारेसे अथवा अन्य किसी प्रकारके द्वारसे बहता है पर वह जल छत्त वा सिंहमुखाकार पनाले आदिका नहीं रहता; वह तो आकाशका बर्सा होता है; यों ही साधु भक्त लोगोंके मुखसे जो सब सत्य बातें और स्वर्गीय वचन निकल के प्रचारित होते हैं, वे साधुओंके निज न समझे जावें। वे तो परमेश्वरकी प्रेरणासे प्रोच्चारित होते हैं।

नबियोंकी प्रतिष्ठा उनकी जन्मभूमिमें नहीं होती है ।

———:o:———

(१५९) प्रश्न—साधु महात्माका पासके आपसो लोग आदर नहीं करते पर दूरके मनुष्य उनका आदर करते हैं; इसका क्या कारण है ?

उत्तर—दृष्टान्त सुनो, बाज़ीगरकी करतूति देख के बाज़ीगरके पासवाले नहीं आश्चर्यित होते पर अन्य जन आश्चर्यित हो के चुप हो जाते हैं ।

(१६०) वज्रबट्टुका बिया पेड़की जड़में नहीं गिरता पर दूर उड़ जा के धरतीपर गिर कर वहीं अपना पेड़ उगाता है; ऐसे ही धर्मप्रचारकका भाव दूर पहुँच के प्रकाशित होता है और सब लोग उसे आदर देते हैं ।

(१६१) प्रसिद्ध है कि दीवटके तले अँधेरा रहता है; इसी प्रकार महात्माके पासवाले लोग महात्माका भाव (क़दर) नहीं जानते पर दूर रहनेवाले उसके कार्यसे अचम्भित हुआ करते हैं ।

———:o:———

पवित्र साधुओंमें ईश्वरकी ज्योतिका प्रकाश रहता है ।

(१६२) सूर्यकी ज्योति सब स्थानमें समान निपतित

होनेपर भी जल और दर्पणमें अधिक उज्ज्वल झलकती है; वैसे ही ईश्वर सबके मनमें प्रकाशित रह के भी भक्तके चित्तमें विशेष अभिव्यक्त होता है।

(१६३) केवल एक ज्ञान तो यथार्थ ज्ञान है; शेष न्यारे सब ज्ञान अज्ञान हैं।

सत्सङ्ग ।

(१६४) साधुकी संगति धर्माचरणका एक प्रधान साधन है।

(१६५) कालक्षेप कैसे करना चाहिये? जैसे चूल्हेमें बुझता आग, अङ्गारे तोड़ कर इन्धनको यथास्थित कर देनेसे पुनः उद्दीप्त होता है; ऐसे ही वार २ साधुकी सङ्गति कर के मनको उभाड़ना चाहिये।

(१६६) लोहारकी दुकानमें जैसे धौकनीके द्वारा अग्नि वार २ सुलगाया जाया करता है; वैसे ही साधुके सङ्गसे मनको नित्य प्रोत्साहित रखना चाहिये।

(१६७) मुफ़स्सिलका नायब रैयतपर कितना ज़ोर ज़ुल्म करता है पर ज़मीन्दारके पास जब वह आता है तब सांझ सवेरे हाज़िरी बजाता है और रैयतके साथ सुलूकसे पेश आता है और रैयतका कोई मुक़द्दमा पेश होता है तो विशेष ध्यानसे उसे निपटाता है। फलतः यह सङ्गतिका प्रभाव है कि ज़मीन्दारके नैकट्यसे उसके भयसे ज़ालिम नायब भी सूधा हो जाता है।

(१६८) भींजी लकड़ी अग्निमें रखनेसे जलांश सूख के बल उठती है; वैसे ही साधुओंकी संगतिसे स्त्री और धनविषयक रस सूख के विवेकरूपी अग्निकी ज्वाला भभक उठती है।

(१६९) साधुओंकी सङ्गति चावलके धोवन (पानी)के समान है। चावलका जल नशा दूर करता है। इस कारण नशेवाज़-का नशा चावलका पानी पीनेसे दूर हो जाता है। संसाररूपी मदमें मत्त जीवका नशा मिटानेके लिये केवल साधुसङ्ग ही एक उपाय है।

---:o:---

गुरु।

(१७०) जिसे साधनका प्रयोजन है, उसे सद्गुरु आप मिल जाता है। गुरुके खोजनेकी चिन्ता साधकको नहीं करनी पड़ती है।

(१७१) समुद्रमें एक प्रकारकी सीपी होती है; वह अन्य २ समयमें सदा मुह खोल कर जलपर उतराती है परन्तु स्वाती नक्षत्रकी वृष्टिका जल एक बून्द पड़तेमात्र वह मुह बन्द कर के तत्क्षण नीचे चली जाती है; पुनः ऊपर नहीं आती। वैसे ही तत्त्वके जिज्ञासु (खोजी) श्रद्धालु साधक भी गुरुमन्त्ररूप एक बूंद जल कानसे पान कर के साधनाके गम्भीर जलमें तुरन्त डूब जाते हैं। वे फिर दूसरी ओर देखने नहीं चाहते।

(१७२) नराकार गुरु फूँकै कान। हरि गुरु मन्त्रद जुड़वै प्रान।

(१७३) गुरु मानो कुट्टनकी नाई है। कुट्टन मनुष्य जैसे

कुट्टनपनसे किसी स्त्रीको किसी पुरुषसे मिला देता है; गुरु भी उसी प्रकारसे मनुष्यको ईश्वरसे मिला देता है।

———:o:———

एक ही गुरु बस (पर्याप्त) है।

(१७४) जैसे किसी अनजाने स्थानमें यथार्थ मार्ग जाननेवालेका कहा मानना उचित है, बहुतोंसे मार्ग पूछनेमें गड़बड़ हो जाती है; तैसे ईश्वरके पास पहुँचनेके लिये बस एक गुरु चाहिये पर हां वह उसके पास पहुँचनेका मार्ग जानता हो।

(१७५) जिस२से हमें कुछ २ उपदेश मिले उस२को गुरु न कह के किसी विशेष नियत मनुष्यको ही गुरु कहें; इसकी क्या आवश्यकता है ? जो जन भारी उत्कण्ठा और सच्चे मनसे ईश्वरको पुकारता है, उसे गुरुकी आवश्यकता नहीं है पर ऐसे पुरुष विरले ही होते हैं; अतः गुरुका प्रयोजन पड़ता है। आचार्य एक होता है पर उपाध्याय अनेक होते हैं। जो हमें कुछ भी उपदेश दे, वही गुरु है। प्रसिद्ध है कि श्री * दत्तात्रेयजी महाराजने चौबीस गुरु किये।

(१७६) जो अपने अध्यात्मगुरुको मनुष्यमात्र बोध कर के देखेंगे, वे उसके उस गुरुभावसे कुछ भी उपकार न उठावेंगें।

———:o:———

शिष्य, गुरुका दोष न देखे।

(१७७) चाहे गुरु कलवारिया जाय। मेरे तो नित्यानँद-

राय। शिष्य गुरुके आचरणको न विचारे किन्तु गुरु जो कहे, वही आज्ञा झुक के पालन करे।

(१७८) कोई मनुष्य गुरुके विषयमें परमहंसके साम्हने तर्क वितर्क कर रहा था। उससे परमहंसदेव बोले–'तुम्हारी इन बातोंसे क्या इष्टसिद्धि है? तुम्हें यदि मौक्तिक चाहिए तो मौक्तिकको ले कर सीपी क्यों नहीं फेंक देते।

(१७९) गुरुकी निन्दा सुनना न चाहिये। जहां गुरुनिन्दा होती है, वहांसे उठ कर स्थानान्तरमें चला जाना चाहिये।

———:o:———

गुरु अध्यात्म उन्नतिमें सहायता करता है।

(१८०) चौपड़के खेलमें गोंटी सब घर घूम के चिकमें आती है और जुग बांध कर चलनेवालेका कोई कुछ नहीं कर सकता। अन्यथा जो जुग न बांधे तो गोंटी कटनेपर गोंटी मार ली जाती है; उसी प्रकार संसारमें भी जो ईश्वरके साथ जुग बांध कर व्यवहार कर सकता है, उसे पराजयका खटका नहीं रहता है।

(१८१) मझधार समुद्रमें जहाज़के मस्तूलके ऊपर बैठा हुआ काक पक्षी जब बैठा २ थक जाता है तब बैठनेके लिये दूसरा ठौर ढूँढ़नेको उड़ जाता है और इधर उधर दूर २ तक दूसरा ठौर न पा के थक कर निराश हो पुनः उसी ठौर (मस्तूलपर) लौट आ बैठता है और समझता है कि निष्केवल यही मेरा आश्रय है; (१) तैसे ही मुमुक्षु जन किसी एक गुरुके

(१) दोहा—सीतापति रघुनाथजी, तुम लगि मेरी दौर।
जैसे काग जहाज़को, सूझै और न ठौर॥ तुलसीदास।

उपदिष्ट साधनके आराधनसे घबड़ा कर कभी २ निराश हो जाते हैं और दूसरे गुरुको ढूंढ़नेके लिये इधर उधर भटकते हैं परन्तु निश्चय जानो, उनको कुछ दिनके पीछे फिर उसी पूर्व गुरुके पास लौट आना पड़ेगा । उस समय वृथा भटकनेके पछतावेसे स्मरण होता रहेगा कि मैं वृथा भटक चुका हूँ । सो उसी स्मरणसे उस गुरुके ऊपर उसकी भक्ति अधिक हो जाती है ।

(१८२) लाखों गुरु मिलते हैं पर चेला एक भी नहीं मिलता । उपदेश तो बहुतेरे देते हैं पर उपदेशानुसार आचरण करनेवाले थोड़े होते हैं ः

(१८३) कौन किसका गुरु है ? एक ईश्वर ही सबका गुरु है ।

—:o:—

संन्यासी ।

(१८४) प्रश्न—संन्यास ग्रहण करनेका अधिकारी कौन है?

उत्तर—जो ताड़के पेड़पर चढ़ जावे* और वहांसे हाथ पांव पसार के ऐसा गिरना जाने कि चोट न खावे; बस वह संन्यासग्रहणका अधिकारी है ।

(१८५) योगी और संन्यासी सांपकी भांति हैं । सांप अपने लिये बिल कभी नहीं बनाता, मूसेके बिलमें आप घुस रहता है । जब एक बिल उसके रहने योग्य नहीं रहता तब दूसरे बिलमें चला जाता है; ऐसे ही योगी और संन्यासी अपने

---

* साईंका घर दूर है जैसा लम्बा खजूर ।
चढ़े तो चाखै प्रेमरस नहीं तो चकनाचूर ॥

लिये घर नहीं बनाते। आज इसके घरमें कल उसके घरमें रह कर के अपना दिन काट लेते हैं।

(१८६) साधु और देवताके दर्शनको खाली हाथ न जाना चाहिये। और कुछ न हो तो हरीतकी ही ले के जाना चाहिये।

(१८७) ऐ माता भगवती! मैं पृथ्वीमें कोई मान प्रतिष्ठा नहीं चाहता। मैं इस जड़ देहका कोई सुख नहीं भोगता। मेरे जीवकी वृत्तिको अपनी ओर तू ऐसा बहा दे, जैसे गङ्गा यमुना सर्वदाके लिये तीर्थराजमें मिली हुई हैं (१)। माता! मुझमें भक्ति नहीं है। मैं योगके विना दीन अनाथ हूँ। मैं किसीसे प्रशंसा पानेका भूखा नहीं हूँ। निज चरणकमलमें मेरे मनको स्थिर रख।

---:0:---

आध्यात्मिक जीवनशक्ति।

(१८८) शक्तिके विना ब्रह्मके जाननेका कोई उपाय नहीं है, बरन शक्ति है, यह समझ कर ही ब्रह्मका अस्तित्व स्वीकार किया जाता है।

(१८९) वनमें जब किसी प्रकारका फूल खिलता है तो उसका गन्ध ही स्वयम् इधर उधर फैल कर सबके समीप फूलका समाचार पहुँचाता है। पुष्प आप कहीं भी नहीं जाता किन्तु सौरभ ही उसका निज परिचायक है। उसी प्रकार ब्रह्म (तत्त्व)-की शक्ति ही ब्रह्म वस्तुका निरूपण कर देती है॥

(१९०) जिस शक्तिद्वारा विश्व (ब्रह्माण्ड) की रचना हुई है, उसे आद्या शक्ति वा भगवती कहते हैं। काली, दुर्गा, जगद्धात्री ये उसीके नाम हैं। इस शक्तिहीसे जड़ और चेतन

---

(१) तेरी मेरी प्रीति कैसे बाँढ़। जैसे गङ्गामें यमुना लहर मारे॥

दोनो शक्ति उत्पन्न होती हैं। उदाहरण यथा—मानो एक वृक्षके एक ही फूलसे एक ही फल उत्पन्न हुआ । उसका कुछ अंश कठिन, कुछ अंश कोमल और कुछ अंश अन्यान्य भावमें परिणत हो गया । जैसे बेलके फलके बाहिरकी त्वचा, भीतरका कोमलांश और उसका सूत और गठन ये सब एक कारणसे उत्पन्न हुए हैं; उसी प्रकार चैतन्यशक्तिसे जड़की उत्पत्ति होना असम्भव नहीं है ।

(१९१) हा ! इस विश्वोद्यानको देख कर ही लोग पागल हो जाते हैं; इस उद्यानकी एक पुतली ही ऐसी है जो योगी ऋषियोंतकके मनको खींच रही है; साधारण लोगोंकी तो कुछ बात ही नहीं । उद्यानाधिपतिके दर्शनके लिये कितने जन लालायित हो रहे हैं ? (१)।

(१९२) ब्रह्मके दो स्वरूप हैं । जब नित्य, शुद्ध, बुद्ध केवल आत्मा साक्षिस्वरूप है, तब वह ब्रह्मपदवाच्य है और जिस समय गुण वा शक्तिसे युक्त हो कर वह रहता है, तब ईश्वर कहा जाता है ।

(१९३) साकार निराकार साधककी अवस्थाके फलभेद हैं। ओंकार उच्चरित होनेपर उसकी प्रथमावस्थामें साकार, द्वितीयावस्थामें निराकार और उसके परे साकार निराकारकी सर्वातीतावस्था है ।

(१९४) साधनकी प्रथमावस्थामें निराकार है, द्वितीय अवस्थामें साकाररूपदर्शन और तृतीयावस्थामें प्रेमका सञ्चार होता है । साधक जब साकार रूपका दर्शन करता है तब उसकी वह नित्यावस्था है; उस समय फिर उसका जड़

---

(१) आरामभस्य पश्यन्ति न तं पश्यति कश्चन । श्रुति ।

पदार्थमें मन बंधा नहीं रहता किन्तु वह अवस्था बहुत देर-तक नहीं रहती; इस कारण फिर उसको जीवात्मामें आना होता है । इस समय केवल उसकी नित्यावस्थाके दर्शनादिका स्मरण-मात्र रहता है ।

(१९५) साकार रूप 'ज्योतिर्घन' होता है; उसमें किसी प्रकारका 'जड़भास' नहीं रहता। जब किसी आकृति(रूप)की उत्पत्ति होती है, तब पहिले धुएंकी नाईं वह दीखती है; पीछे घनीभूत आकारविशेषको धारण करती है और भक्तसे बातें करती है; मुहमाँगे वर देती है । पीछे रूप गल कर शनैः २ अदृश्य होता है ।

(१९६) ज्योतिर्घनसे अतिरिक्त अन्य प्रकारका भी साकार रूप है। मनुष्यके आकारमें कभी २ भक्तके समीप उसका आविर्भाव देखा जाता है ।

———:०:———

ज्ञान, भक्ति और प्रेम ।

(१९७) और २ युगोंमें अन्य प्रकारके साधनका नियम था। इस समय उन सब साधनोंसे मनुष्यके सिद्ध होनेमें कठिनाई है। तिसका यह कारण है कि पहिले आजकालके जीवकी परमायु ही अति अल्प है; तिसपरसे नाना प्रकारके रोग और शोकसे लोग जीर्ण शीर्ण हो रहे हैं; कठोर तपस्या किस प्रकारसे कर सकते हैं ? इस लिये नारदोक्त भक्तिमत ही इस युगमें सबसे अच्छा है ।

(१९८) विचार दो प्रकारके हैं; अनुलोम और विलोम। तथा हि-बाहिरको छोड़ भीतर पकड़ना, इसको विलोम और

भीतरसे बाहिर पकड़ना, इसको अनुलोम कहते हैं । जैसे बेल-का फल यह छाल लासा, गूदा और बीज आदिकी समष्टि है; इस विचारको विलोम कहते हैं। इन सबकी एक सत्तासे उत्पत्ति हुई है; यह ज्ञान अनुलोम विचारसे उत्पन्न होता है ।

(१९९) ज्ञान और भक्ति नित्य हैं। लीलाभाव अथवा आत्मतत्त्व और सेव्यसेवकभाव, इन मार्गोंको ले कर विद्वानोंमें सर्व्वदा आपसमें वाद विवाद हुआ करते हैं। ज्ञानी लोग कहते हैं कि ज्ञान विना अन्य उपायसे ईश्वरलाभ नहीं हो सकता और भक्तिमार्गमें भक्तिहीकी प्रधानता कही जाती है । 'चैतन्य-चरितामृत'में लिखा हुआ है कि 'ज्ञान' पुरुष है, वह घरके बाहिरकी वार्त्ता कह सकता है और "भक्ति" स्त्रीजन है, वह अन्तःपुरके समाचार देनेमें समर्थ है । इस कारण ज्ञानमार्गसे जो ज्ञान उपार्जित होता है, वह सर्वथा स्थूल और बाहिरकी बात है। भक्त लोगोंके मतमें भक्ति ही श्रेष्ठ है।

(२००) ज्ञान अर्थसे परोक्षरूपसे जानना और विज्ञान अर्थसे परोक्षरूपसे विशेष कर के जानना । विज्ञानके पीछे अर्थात् भगवान्‌का साक्षात्कार होनेपर भक्तके मनका भाव जिस प्रकार उदय होता है, उसी भावको भक्ति कहते हैं । इसको विशुद्ध विज्ञान भी कह सकते हैं । यह 'विशुद्ध विज्ञान' और 'भक्ति' वास्तवमें एक ही वस्तु है । इनमें परस्पर कुछ भी विभेद नहीं है ।

(२०१) भक्तजन जभी जैसा अनुभव करते हैं, जानना चाहिये कि तभी वह उनका चरम अनुभव नहीं है। कारण यह है कि उनकी वह अवस्था चिरस्थायी हो के नहीं रह सकती। देहरक्षाके लिये आहार करनेका प्रयोजन है क्योंकि

अनाहार रहनेसे देह विनष्ट हो जाता है; यह भगवान्‌का बनाया नियम है। जो लोग भगवान्‌के रूपके ध्यानमें निरन्तर निमग्न रह काल हरण किया चाहते हैं, उनका देह इक्कीस दिनसे अधिक नहीं जीवित रह सकता। देहान्त होनेपर उनकी कैसी अवस्था होती है? यह बात बतलानेका किसीको सामर्थ्य नहीं है। दैहिक सम्बन्धसे विचार करनेमें ज्ञानीका निर्विकल्प समाधि लगना और भक्तकी यह अवस्था, दोनो एक ही बात समझी जाती है।

(२०२) कलिकालमें उपासनामें तमोगुणप्रधान चैतन्यके अनुकूल साधनको छोड़ कर सत्त्वगुणप्रधान चैतन्यके अनुकूल साधन नहीं हो सकते हैं। सत्त्वगुणप्रधान चैतन्यानुकूल उपासनामें माधुर्य्य भावसे कार्य्य होता है और तमोगुणप्रधान चैतन्यानुकूल उपासनामें दाम्भिकताके लक्षण प्रकट होते हैं। जैसे किसी धनीकी उपासना कर कुछ अर्थलाभ करना, सत्त्वगुणप्रधान चैतन्यके अनुकूल कहा जाता है। इस प्रसङ्गमें भगवान्‌की कृपा लाभ करना उद्देश्य है। तमोगुणप्रधान चैतन्यके अनुकूल उपासनामें यह बात नहीं होती है। जैसे डकैत लोग किसी घरमें कहां धन रक्खा हुआ है, पहिले इसका पता लगा लेते हैं; पीछे कालीपूजाके अन्तमें मद्य पान कर 'जय काली २' बोल कर वस्त्रका टुकड़ा फाड़, रे रे शब्द करते हुए घरका द्वार तोड़ उसमें पैठ के सब धन मूस ले जाते हैं; तमोगुणप्रधान साधन भी उसी प्रकारका है। 'जय काली २' पुकार कर उन्मत्त हो जाना, अथवा 'हरि बोल२' बोलकर मत्त हो जाना, ये दोनो बातें तमोगुणप्रधान साधनमें समान हैं।

(२०३) अद्वैतज्ञानको पल्लेमें पहिले बांध लो; फिर जो इच्छा हो वही करो परन्तु यथेष्टचेष्टाचारी मत हूजियो।

(२०४) ईश्वरप्राप्ति दो प्रकारकी है। प्रथम जीवात्मा परमात्माका अभेदज्ञान; द्वितीय, ईश्वरके स्वरूपका साक्षात्मक दर्शन है। इन दोनों प्रकारोमें एकका नाम ज्ञान है दूसरेका भक्ति ।

(२०५) आत्मा ज्योतिःस्वरूप है; केवल अहंकारके परदेकी ओटसे वह आवृत हो रहा है। अहंकारके नष्ट होनेहीसे आत्मलाभ होता है । आत्मज्ञानके ज्योतिःसञ्चारसे परमात्माके साथ शीघ्र ही जीवका ऐक्य बोध हो जाता है ।

(२०६) आदिमें अभिमानको परित्याग करना चाहिये क्योंकि ज्ञानके द्वारपर अभिमान, स्थूल वृक्षके समान पैंड़ा रोके खड़ा हुआ है। ज्ञानरूप कुल्हाड़ीसे जब उसका मूलोच्छेद किया जायगा, तब परमात्माका साक्षात्कार आप ही आप

(२०७) भक्ति दो प्रकारकी है । एक ज्ञानप्रधान भक्ति दूसरी प्रेमप्रधान भक्ति। ईश्वरकी सत्ता है, इससे उसका दर्शन, वन्दन और आत्मनिवेदन इत्यादि जो कुछ कार्य हमसे बन पड़ता है, उसे ज्ञानप्रधान विश्वासभक्ति कहते हैं। पर उन्हीं ऊपर उक्त कार्योंके करनेको भजनात्मक भक्ति वा विज्ञान कहते हैं।

(२०८) भक्तिमतमें प्रथम निष्ठा उत्पन्न होती है। फिर उसके पश्चात् भावभक्ति जागती है । सबके अन्तमें उदय होता है।

(२०९) भक्ति पांच प्रकारकी समझी जाती है। १—अहैतुकी, ३—ज्ञानभक्ति, ४—शुद्धभक्ति, ५—मधुरा वा

(२१०) भावभक्ति पांच प्रकारकी होती है। यथा शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर।

(२११) भावभक्तिके परिपक्व हो जानेपर उसे प्रेमाभक्ति कहते हैं।

(२१२) प्रेमाभक्ति चार प्रकारकी होती है। समर्था, समञ्जसा, साधारणी और एकाङ्गी।

अपने सुख वा दुःखको कुछ न समझ प्रभुके सुखजनक कार्यमें आत्मार्पणका नाम समर्था प्रेमा है। श्रीमती राधिकाजीका ऐसा ही प्रेम थी।

जिसका प्रेम करता हूँ, उसे पाऊँ तो हम दोनो सुखी होवेँ; इसका नाम समञ्जसा प्रेमाभक्तिभाव है।

जब तक प्रेमकी अभिमत वस्तु नहीं मिलती तबतक उसे प्राप्त करनेके लिये जो अनुरागभाव रहता है, उसे साधारणी प्रेमाभक्ति कहते हैं। साधारण गोपियोंकी यही प्रेमाभक्ति थी।

एक मनुष्य दूसरे मनुष्यको प्यार करता है परन्तु वह दूसरा मनुष्य उस प्रथम मनुष्यका अनुरागी नहीं है; ऐसे एक अलङ्गके प्रेमको एकाङ्गी प्रेमाभक्ति कहते हैं। जैसे पतङ्ग तो प्रदीपको चाहता है पर प्रदीप पतङ्गको नहीं चाहता।

(२१३) जो ईश्वरको अपना मन प्राण, समर्पण कर के कालक्षेप करता है, उसके मनमें अन्य कोई भाव नहीं आता और भजन छोड़ उससे दूसरे किसी प्रकारका कार्य भी नहीं हो सकता। वह जो कुछ करता है, जो कुछ कहता है, ईश्वरको छोड़ के और कुछ नहीं है। इसका फल यह होता है कि उसको अवश्य ईश्वर लाभ होता है। जो जन अन्य २ विषयोंमें अपने मनको जितना खण्ड २ विच्छिन्न किये रहता है, उतना ही

वह ऐश्वरिक भावसे विच्युत बना रहता है; फलतः सिद्धिमें वह उतना ही पिछड़ भी जाता है।

(२१४) पागल हुए विना तत्त्वज्ञान दुर्लभ है; चाहे कुछ न कुछ जान बूझ के ही मूर्ख बनो अथवा सर्व शास्त्र पढ़ लिख कर मूर्ख बनो, जिसमें सुभीता जानो, सो करो।

(२१५) हे मित्रगण! हम लोग जबलों जीवते हैं, तबलों सीखते हैं।

(२१६) भगवान्, भगवान्‌की भक्ति और भगवद्भक्त ये तीनो आपाततः भिन्न २ प्रतीत हो के भी मूलमें एक ही हैं(१)।

(२१७) प्रेमाभक्तिका लक्षण क्या है? प्रेमाभक्तिके योगसे साधक ईश्वरको आत्मीय कर के जानता मानता है; जैसे गोपियां श्रीकृष्णको गोपीनाथ कहती थीं, न कि जगन्नाथ कह के पुकारती थीं।

(२१८) प्रश्न—भक्तगण देवीको वार २ माता कह के पुकारनेमें इतने उदग्र क्यों होते हैं? उत्तर—क्योंकि माताके आगे लड़के बहुत छइलाते हैं।

(२१९) किसी तार्किकने परमहंसजीसे पूछा—ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता ये तीनो क्या हैं? परमहंसजीने उत्तर दिया—इतनी विद्या तो मुझमें नहीं है जो इनका भेद बतला सकूं बाबा! मैं तो केवल माता भगवतीको सब कुछ जानता हूँ। पाठकगण! सोचो—इस उत्तरसे परमहंसजीने ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता इन तीनोंका निर्देश कर दिया क्योंकि परमहंसजी देवीके तत्त्वज्ञ थे*

---

(१) त्रिधाप्येकं सदाऽगम्यं गम्यमेकप्रभेदनैः। प्रेम प्रेमी प्रेमपात्रं त्रितयं प्रणतोऽस्म्यहम्। भक्त भक्ति भगवन्त गुरु चतुर नाम वपु एक। भक्तमाल।

* समाधिमें परमहंसजीका देवीसे ऐक्य हो जाता था। देवी ही उनका ज्ञेय भी थीं क्योंकि परमहंसजीने उन्हें जाना था और परमहंसजीका देवीविषयक ज्ञान ही ज्ञान भी था।

(२२०) जैसे फनिगा प्रकाश देख के आप ही अग्निमें गिरता है; तैसे भक्त भी भगवान्‌के निमित्त सर्वस्व त्याग देता है । इसमें असम्भावना क्या है ?

(२२१) दादको जितना खुजलाते जाओ, उतना ही वह अच्छा लगता है; भक्त भी उसी प्रकार भगवान्‌के नाम ग्रहण करने और स्तुति गानेसे तृप्त नहीं होते किन्तु उसमें अधिकाधिक उत्तेजित होते हैं ।

——:o:——

प्रत्येक जन अपने२ धर्ममतका अनुसरण करे ।

(२२२) प्रश्न—कौनसा मार्ग पकड़ना चाहिये ?

उत्तर—तुम्हारे (अर्थात् हिन्दुओंके) लिये आर्य ऋषियोंसे परम्पराप्राप्त सनातन वर्णाश्रमधर्म पथ ही श्रेष्ठ है * ।

(२२३) सब लोग छलदीवाली उठा के अपनी२ भूमिको सीमाबद्ध कर लेते हैं पर आकाशको कोई विभक्त नहीं कर सकता है क्योंकि आकाश तो सबके ऊपर केवल एक वर्तमान है । मनुष्य अज्ञानावस्थामें अपने धर्ममतको सबसे उच्च और सच्चा बतलाता है पर परमार्थतः ज्ञान होनेपर सब धर्ममतके भीतर उसे वही एक अखण्ड सच्चिदानन्द परमेश्वर लक्षित होता है ।

(२२४) अपनी२ धरतीकी सीमा सब कोई छलदीवाली

* परमहंसदेवकी दृष्टिमें प्रत्येक सम्प्रदायका मनुष्य सर्वदा समान संमानसे संमानित था । उनने हिन्दु लोगोंके लिये हिन्दुधर्मको श्रेष्ठ कहा; यह कह कर उन्हें कोई किसी सम्प्रदायके अन्तर्वर्ती न समझे क्योंकि जो जिस धर्ममतको मानता था, उसे वे उसी धर्ममतानुसार अनुष्ठान करनेका उपदेश देते थे ।

उठा के बांट लेते हैं परन्तु आकाशका विभाग कोई नहीं कर सकता है; ऐसे ही अज्ञानी अपने २ धर्ममतको सर्वोत्कृष्ट कहते हैं पर जिनका चैतन्यज्ञान उदित भया है, वे देखते हैं कि सर्व धर्म-मत के मूलमें एक अद्वितीय अखण्ड सच्चिदानन्द ही विराज-मान है।

(२२५) माता जैसे एक बालकके निमित्त दाल भात और अन्य बालकके निमित्त सागूदाना उनके लिये अवस्थोचित जान कर पकाती है; भगवान् भी उसी प्रकार प्रत्येक जीवके उपयोगी साधन संघटित करता है।

—:o:—

अन्य २ धर्ममतपर विद्वेषभाव न रखना।

(२२६) साधक लोग भिन्न २ धर्ममतके विषयमें कैसा भाव रखते हैं? इस प्रश्नके उत्तरमें परमहंसजीने कहा—सच्चे साधु साधक भक्तको यह समझना चाहिये कि अन्य २ धर्ममत भी मनुष्यों की भिन्न २ रुचि अनुसार भगवान्के पास पहुँचनेके एक २ मार्ग हैं।

(२२७) तुम निज विश्वासके ऊपर सर्वदा दृढ़ और अटल रूपसे स्थिर बने रहो। हां, असहिष्णु हो के स्वधर्म-मतपोषणार्थ कट्टरपनको बिलकुल छोड़ देना चाहिये।

(२२८) किसी कुएँमें एक मेंडक रहता था। दैवात् उसी कुएँमें समुद्रवासी दूसरा मेंडक आ गिरा। कुएँके निवासी मेंडकने उससे पूछा—बतलाओ, समुद्र कितना बडा है? दूसरे मेंडकने कहा—बहुत ही बड़ा है। कुएँके मेंडकने अपने बड़े २ पांव फैला के कहा—क्या इतना बडा? समुद्रका मेंडक बोला—इससे बहुत ही बहुत कहीं बडा है। कुएँका मेंडक चमत्कृत हो के कूएँकी एक

छोरसे दूसरी छोरतक छलांग मार कूद जा के बोला-इतना बडा? तब समुद्रवासी मेंडकने कहा—इससे भी बहुत ही बडा है। निदान कूएँका मेंडक उसकी बातकी प्रतीति न कर सका । सो बोला—तुम झूठे हो, झूठ कहते हो । इतने बड़े इस कूएँसे भी कुछ वस्तु भला कहीं बडी हो सकती है ? इस कहानीका तात्पर्य यह है कि ऐसे ही क्षुद्रबुद्धि जीव अपनी बातके आगे सबको झूठे ठहराते हैं ।

—:o:—

वितण्डा मत ठानो ।

(२२९) धर्ममतविषयक वादविवाद मत करो । जैसे तुम अपनी युक्तिका सहारा रखते हो, वैसे ही सब लोगोंको उनकी युक्तिका आश्रय रखने दो । शुष्क तर्कसे कोई कुछ न समझेगा । ईश्वरकी दयासे सबको अपनी २ भूल सूझेगी ।

(२३०) चेतो; जिस जलाशयमें थोड़ा जल है, उसका जल ऊपरसे धीरे २ पीना उचित है; उसका पानी हिलाना उचित नहीं है क्योंकि हिलानेसे नीचेकी मलिनता ऊपर आ कर के ऊपरी स्वच्छ पानीको भी मैला कर देती है; ऐसे ही जो पवित्र होनेकी इच्छा हो तो श्रद्धालु हो कर धीरे २ साधना करो । स्वकपोलकल्पित शास्त्रके तर्क वितर्क मत उपस्थापित करो । तर्क वितर्क करनेसे मनुष्यका दुर्बल मन भ्रमग्रस्त हो जाता है; उससे हानिभिन्न कुछ भी लाभ नहीं होता है ।

(२३१) मधुमक्षिका पुष्पकी चारो ओर पहिले गूंजती फिरती है; तब शहद पाती है और जब शहद पाती है तब आप चुप हो जाती है, फिर गूंजती नहीं; ऐसे ही जबतक मनुष्य धर्म२

चिल्ला के चीत्कार करता है, तबतक वह धर्मको नहीं पाता किन्तु जब धर्मको पाता है तब आपसे चुपा जाता है ॥

(२३२) छूछे घड़ेमें पानी भरनेसे भक २ शब्द होता है परन्तु भरे घड़ेमें जल भरनेसे फिर और शब्द नहीं होता है; ऐसे हो जिसकी ईश्वरसे भेंट नहीं हुई है, वह ईश्वरके विषयमें कोलाहल मचाता है परन्तु जिसे ईश्वरका साक्षात्कार हुआ है, वह स्थिरतासे उसके आनन्दका आस्वाद लेता है।

——:o:——

शास्त्रोक्त क्रिया तथा वर्णाश्रमधर्म।

(२३३) जब अपनी पूँछ और मूँड़ काट छाँट देओगे; तब सब लोग तुम्हें लेंगे क्योंकि अबके लोग अपनेको सारग्राही समझते हैं।

(२३४) प्रश्न—आभ्यन्तरमें जो एक सच्चिदानन्द ही सत्य है तो शास्त्रोक्त बाह्याचार विडम्बना की क्या आवश्यकता है?

उत्तर—चावलकी आवश्यकता सचमुच है पर निस्तुष चावल बोनेसे धानकी खेती नहीं होती। यद्यपि धानकी भूसीसे और कुछ प्रयोजन न निकले तौ भी विना भूसीके धानका पौधा नहीं उगता; वैसे ही शास्त्रोक्त सब विधियोंको यथाशक्ति किये विना धर्मलाभ नहीं होता॥

(२३५) भीतर जो अध्यात्मभाव है और बाह्यमें जो विधिविहित क्रियाके अनुष्ठानके चिन्ह हैं; दोनोंको सामञ्जस्यसे मानना चाहिए, क्योंकि उनमेंसे एक आभ्यन्तर भाव है और दूसरा बाह्यमें परिचायक चिन्ह है। तात्पर्य यह है कि भीतर बाहिर एकसा होना चाहिए।

(२३६) पूजा तबतक रकना चाहिये जबतक हरिनाम सुन के प्रेमका आंसू न टपके। कानमें भगवान्का नाम सुनते ही जिसकी आंखसे जल निकल आता है, उस मनुष्यको पुनः पूजा करनेका प्रयोजन नहीं है॥

(२३७) सात्त्विक, राजस वा तामस पूजा कैसी होती है? जो मनुष्य अत्यन्त भक्तिसे मानसिक पूजा करता और लोगोंको दिखानेके लिये आडम्बर नहीं रचता है, उसकी पूजाको सात्त्विक पूजन कहते हैं। दूसरा जन पूजार्थ घर साजता है और नाच गान तथा फलाहारके पदार्थ जुटाता है, उसका पूजन राजस पूजा कहाती है। इनके व्यतिरिक्त तीसरा पुरुष न केवल नाच गान करता है, बरन पशुबलि देता और मदिरा चढ़ाता है, उसका पूजन तामस पूजन कहाता है।

———:o:———

संप्रदाय।

(२३८) ज़खीरह (संघट्ट) बांधना भला है क्या? सत्य है, बहती जलधारमें कमल नहीं लगते किन्तु बंधे जलमें कमलोंका ज़खीरह (ढेरी) होता है; ऐसे ही वह मनुष्य जिसका मन ईश्वरकी ओर प्रवण है, वह किसी कार्यके लिये ज़खीरा बांधनेको समय न पावेगा। इसके विपरीत जो मनुष्य आदर और प्रतिष्ठाका भूखा है, वह ज़खीरा बांधता है।

(२३९) जिस समय कलकत्तेमें एक ओर पण्डित शशधर तर्कचूड़ामणि हिन्दुधर्मका और दूसरी ओर पण्डित शिवनाथशास्त्री महाशय ब्राह्म धर्मका पक्ष ले के वाद कर रहे थे, उस

समय परमहंसदेवजीके पास बहुतसे लोग आये। उनमेंसे कोई इस पक्षवादीकी और कोई उस पक्षवादीकी प्रशंसा करने लगा। परमहंसदेवजी सबकी सुन कर बोले—'मैं देखता हूं कि मेरी सच्चिदानन्दमयी माता दोनों दलोंसे अपना कार्य सिद्ध कर ले रही हैं'।

(२४०) प्रश्न—हिन्दुओंके बीच नाना धर्ममत प्रचलित हैं; उनमेंसे हम किसको मानें? उत्तर—पार्वतीने श्रीशंकरजीसे पूछा—भगवान् सच्चिदानन्दकी खूट (टोंक आरम्भ) कहां है? महादेवजीने कहा—'विश्वासमें?' तात्पर्य यह है कि धर्ममतभेदसे कुछ नहीं आता जाता है। जो जिस धर्ममतका सांप्रदायिक शिष्य हो, वह विश्वासपूर्वक उसीका अनुसरण करे।

(२४१) एक साधु ब्राह्मने परमहंससे पूछा—'ब्राह्म धर्मसे हिन्दुधर्ममें क्या प्रभेद है'? उनने कहा—'जैसा पों २ बजानेसे स्वर निकालनेमें' ब्राह्म धर्म्म एकमात्र ब्रह्मका पों २ पकड़े हुये है और हिन्दुधर्म्म उसके ऊपर नाना प्रकार स्वर निकाल रहा है॥

(२४२) धर्म कभी२ विकृत भाव क्यों धारण करता है? हां, आकाशका जल तो स्वतः स्वच्छ होता है पर छत्त और पनारेमें बहते ही वह मैलके मेलसे मैला हो जाता है।

——:o:——

धर्मकी बात बोलना सहज है पर उसका आचरण कठिन है।

(२४३) "हुक्का चिलम तम्बाकू आग" यह बोल मुह-

से बोलना सहज है पर तबलेमें इसका बोल बजा के निकालना जैसे कठिन है; तैसे ही धर्मकी बात मुखसे कहना सहज है पर उसे आचरणमें लाना कठिन है।

(२४४) मुहसे बार२ ढोल२ कहनेसे ढोलकसे कभी एक आवाज़ भी नहीं निकलती है; ऐसे ही मुहसे भारी२ ज्ञानगाथा कथन करनेमात्रसे पारमार्थिकशक्तिलाभ नहीं होता है।

(२४५) एक मनुष्य बच्चेको गोदमें ले के किसी साधुके पास औषधि मांगने गया। उस दिन साधुने कहा—आज जाओ, कल आइयो। जब दूसरे दिन वह आया तब साधुने कहा—इसे गुड़ न खिलाइयो तो यह (लड़का) अच्छा हो जायगा। यह सुन उस मनुष्यने कहा—आपने कल्ह ही यह बात क्यों नहीं बताई। साधुने कहा—कल्ह मेरे पास गुड़ था; लड़का गुड़का नाम सुनता तो मुझसे मांगता। तात्पर्य यहहै कि साधु लोगोंका कार्य देख के बहुधा साधारण लोग भी वही करने लगते हैं। दूसरेसे जैसा करानेकी इच्छा हो, वैसा पहले आप करना चाहिये।

———:o:———

दो प्रकारकी प्रवृत्तियोंको लिये हुए मनुष्य जन्म लेता है।

(२४६) मनुष्यके भीतर अहन्ताबुद्धि दो प्रकारका कार्य दे सकती है। उनमेंसे उसका एक कार्य तो पक्का है पर दूसरा कच्चा। हमारा घर, हमारा लड़का, हमारी स्त्री, हमारा धन इत्यादि ममतात्मक अहन्ताका कार्य कच्चा है और जो

कुछ सुनते देखते हैं सो सब, यहांतक कि शरीर भी हमारा नहीं है; हम तो नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त ज्ञानस्वरूप हैं, ऐसी भावना अहन्ताका पक्का कार्य है ।

(२४७) तराज़ूका पल्ला जिस ओर भारी होता है, उसी ओर झुक जाता है और जिस ओर हलका होता है, उस ओर ऊपरको उठ आता है; इसी प्रकारसे जिसके ऊपर सांसारिक मान, सम्भ्रम, रुपया इत्यादि नाना प्रकारका भार है, वही नीचे जाता है अर्थात् अधोगति (नरकगमन) पाता है और जिसके शिर कोई भी भार नहीं है, वह उठ कर ईश्वरके राज्यमें पहुंचता है ।

(२४८) छोटी मछली जालके भीतर अनिवारित जल चला जाता देख कर सुखसे उसमे घुस जाती है पर फिर बाहिर नहीं आ सकती किन्तु तुरन्त मर जाती है; ऐसे ही संसारमें भी बाह्य चमत्कार देख के लोग उसमें भूलसे फंस फूल कर मर जाते हैं । भवजालमें फंसते क्या लगता है ? उससे बाहिर निकलना दुर्घट है ।

——:o:——

बालकोंके हृदयको ईश्वरकी ओर झुकाओ।

(२४९) कच्चा बांस सहजमें लचता है। पक्का बांस लचानेसे टूट जाता है* । लड़कोंका मन तो ईश्वरमें लग सकता है पर बुड्ढोंका मन उससे उचट जाता है ।

* फिर न नवइ जिमि उकठि कुकाठू । मानसरामायण ।

(२८०) आमका पक्का फल भगवान्‌को चढ़ाया जाता और दान, भक्षण आदि अन्य २ कार्योंमें भी लाया जाता है पर एक वार कौवेके चोंच मारनेसे वह किसी कामका फिर नहीं रह जाता क्योंकि अशुद्ध हो जानेसे न भगवान्‌को वह चढ़ाया जा सकता है, न ब्राह्मणको दान दिया जा सकता है और न खाया जा सकता है; ऐसे ही पवित्रचित्तवाले बालक वा युवाको धर्ममार्गपर ले जाना विशेष सुगम है। इस लिये तदर्थक यत्न करना उचित है क्योंकि उनका मन विषयवासनासे दूषित नहीं रहता है परन्तु यदि एक वार भी विषयबुद्धि जो उनके मनमें आ जाती है वा स्त्रीरूपी राक्षसी उन्हें ग्रास करलेती है तो फिर धर्मपथपर चलाना निपट कठिन होता है।

(२८१) बूढ़ा तोता कहीं राम २ कहता है अर्थात् सुग्गेका कण्ठ फूटनेपर वह और पढ़ना नहीं सीख सकता; ऐसे छोटेपनमें पढ़ानेसे बालक पढ़ सकता है। बुढ़ापेमें मनुष्यका मन ईश्वरकी ओर नहीं झुकता। हां बाल्यावस्थामें विना परिश्रम उधर झुकाया जा सकता है।

(२८२) प्रश्न—आप लड़कोंसे इतना प्रेम क्यों रखते हैं? उत्तर—पहिले बालक सोलहो आने अपने मनमें मगन रहता है। जब उसका विवाह होता है तब आठ आने स्त्रीमें बँट जाता है। लड़के बाले होनेपर उनपर बारह आने चला जाता है। शेष बचे चार आने; सो माता, पिता, आदर मान, अहङ्कार और छैलाचिकनाईमें धीरे २ बंट जाता है। इस कारणसे मनुष्यका मन बाल्यावस्थासे यदि ईश्वरकी ओर लगता है तो वह ईश्वरको अलबत्ता पा सकता है।

जो जगत्के कामोंमें फँसे हुए हैं, उनको भजन करनेका अवसर काहेको मिल सकता है ।

—:o:—

(२५३) किसीने किसी साधुसे पूछा—जब मेरा बेटा हरिश्चन्द्र बड़ा हो जायगा तब मैं उसका विवाह कर के उसे घरका बोझा सौंप आप संसार त्याग कर योगसाधन करूंगा; इस ब्यौरेमें आपकी क्या राय है ? इस प्रश्नको सुन के साधु बोला—'तुम्हारी योगसाधनेच्छा कभी न पूरी होगी क्योंकि पुत्रके विवाहोत्तर तुम्हारी चित्तवृत्ति कहेगी कि हरिश्चन्द्र मेरा प्यारा है; इसे न छोड़ूंगा। कुछ दिन पीछे फिर यह भाव उदय होगा कि हरिश्चन्द्रके भी लड़का हो; उसका विवाह करूं। निदान ऐसे ही उत्तरोत्तर इच्छा बढ़ती जायगी जो पूरी कभी न होगी।

(२५४) जिस सरसोंसे भूतको झाड़ के उतारते हो, उसीके भीतर यदि भूत घुसा है तो वह सरसों भूत कैसे छुड़ा सकेगी; वैसे ही जिस मनसे साधन करना चाहते हो, यदि वही विषयी है तो तुम्हारा साधन कैसे सिद्ध होगा ?

—:o:—

संसारलिप्त पुरुष धर्मके विषयमें भी कपटी होते हैं ।

(२५५) स्प्रिङ्गलगी गद्दीपर बैठनेसे गद्दी नवती है और

उससे उठनेपर वह फिर उठ जाती है; उसी प्रकार संसारी मनुष्य जब धर्मकी चर्चा सुनता है तब छिनेक धार्मिक बन जाता है; सत्य है, पर संसारमें घुसते ही फिर वह सब भूल कर ज्योंका त्यों हो जाता है।

(२५६) लोहारकी दुकानमें लोहा जबतक भट्टीमें रहता है तबतक लाल रूप धारण करता है सही, पर बाहिर निकालते ही वह झवां कर काला पड़ जाता है; तैसे ही संसारी मनुष्य धर्ममन्दिरमें अथवा धार्मिकके सङ्गमें जबलों रहता है तबतक धार्मिक बना रहता है पर वहांसे बाहिर हुआ कि फिर धर्मभावको भूल जाता है।

(२५७) पार्थिव विषयलाभकी कामनासे संसारी लोग बहुतेरे धर्म कर्म करते हैं परन्तु विपद्, दुःख, दरिद्रता और मृत्युका समय आनेसे उन लोगोंको धर्मकी सारी बात भूल जाती है। टुइयां (छोटी सुग्गी) सारे दिन "राधे कृष्ण २ पढ़ती है परन्तु बिल्ली आ कर जब उसकी टोंटी (गर्दन) पकड़ती है, तब वह राधे कृष्ण २ भूल कर चें २ करती है।

(२५८) मुहरीमें जल जैसे एक ओरसे आता है और दूसरी ओरसे निकल जाता है; वैसे ही संसारी बद्ध जीव एक कानसे धर्मवार्ता सुनता है और दूसरे कानसे उसे निकाल देता है।

(२५९) जैसे पत्थरमें कील नहीं धँसता; हां मिट्टीमें वह घुस जाता है; तैसे ही साधुका उपदेश बद्ध जीवोंके मनमें नहीं बैठता पर श्रद्धालु जनके चितमें वह अनायास भिद जाता * है।

---

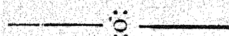
* व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन। बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यसायिनाम्। गीता।

(२६०) जैसे कबूतरके बच्चेके गलेमें हाथ लगानेसे जान पड़ता है कि गलेमें दाना है; तैसे ही बद्धजीवसे बात करनेसे जान पड़ताहै कि इसके मनमें विषयवासना गजबज भरी है; बिषय ही उसे भाता है; धर्म नहीं भाता ॥

(२६१) बद्ध जीव न आप हरिनाम सुनता है, न औरोंको सुनने देता है बरन उपासना करते देख धर्मसमाज और धर्मिष्ठ जनोंकी निन्दा कर उन्हें हंसी ठट्ठेमें उड़ाता है ।

(२६२) जैसे बालकको रमणका सुख नहीं समझाया जा सकता; तैसे बिषयलिप्त मायाबद्ध संसारी जीवको ब्रह्मानन्द-का परिचय नहीं पहुंचाया जा सकता है ।

(२६३) घड़ियालके देहमें हाथियार मारनेसे वह (हथियार) उलटा उछल आता है; घड़ियालको चोट नहीं लगती; ऐसे ही बद्ध जीवको चाहे कितना ही धर्म सिखाओ पर उसके चित्तमें कुछ भी नहीं चुभता है ।



दुष्कर्मकारीका हृदय ।

(२६४) दुष्टोंका मन मानो कुत्तेकी दुम है। चाहे कुछ भी करो, कुत्तेकी दुम टेढ़ीकी टेढ़ी जैसे बनी रहती है; वैसे ही दुष्टोंका मन कदापि नहीं सीधा होता ।

(२६५) छाड़ मन हरिविमुखन्हको सङ्ग । पाहन पतित बाण नहिं भेदत, रीतो करत निषङ्ग (१) ।

(२६६) चलनीका यही व्यवहार है कि सारभागको

(१) सूरदास ।

बाहिर निकाल कर असारको अपने भीतर रख लेती हैं; ऐसे ही असत् लोग भी सत्को छोड़ के असत्को ग्रहण कर लेते हैं।

(२६७) चलनीके विपरीत सूपका व्यवहार है कि सारांशको अपनेमें रख के असारको बाहिर फेंक दूर गिरा देता है; यों ही भले लोग भलेको ले के अनभलेको त्याग देते हैं।

(२६८) जब मन दुष्ट वासनामें लिप्त होता है तब वह मानो कसाईटोलेमें निवास करता है।

(२६९) अन्य २ मनुष्योंके मैले कपड़े अपने घरमें इकट्ठे कर के धोबी मानो वस्त्रपति बन जाता है परन्तु कपड़े साफ़ करने उपरान्त ही उसका घर कपड़ोंसे खाली हो जाता है; यह दृष्टान्त दे कर परमहंसदेव बहुधा उपदेश दिया करते थे कि 'धोबीकी नाईं मालिक न हूजियो'।

———:o:———

कनक कामिनीमें लिप्त मन।

(२७०) पक्की हाँड़ियां यदि टूट जायें तो फिर वे नहीं जुड़ सकतीं; हां कच्ची हांड़ी टूटे तो वह फिरसे जोड़ दी जा सकती है; ऐसे ही जिसके भीतर पापविषयवासना थोड़ी है, वह अपने मनको ईश्वरकी ओर लगा सकता है परन्तु पापविषयवासनामें जिसका मन पग गया है, वह किसी प्रकारसे भी ईश्वरमें अपना मन नहीं लगा सकता।

ऐसे
प्रकृ

हड़
पुरु
पर
इस

कन
मर
णा

वैरु
पुरु
है
हो

२७१) कच्ची मिट्टीसे मूर्ति बन सकती है, न कि पक्की वह बन सकती है; ऐसे ही जिसका मन विषयवासनामें । फिर वह भगवद्भजन आदि किसी उत्तम कार्यके समर्थ नहीं रह जाता है ।

२७२) भींगी दियासलाई चाहे कितना घिसो वह न । हां; घिसनेसे उसमेंसे धुआं उठेगा परन्तु सूखी लाई घिसतेमात्र बल उठती है । जानना चाहिये कि न सूखी दियासलाईसा ही है क्योंकि भगवच्चर्चा होते नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भर आते हैं परन्तु कामिनी कनकमें जनोंका मन सहस्रों हरिचर्चासे भी भजनके लिये हीं होता है ।

२७३) गीली मिट्टीमें छाप (मुद्रा) पड़ती है । पत्थरमें पड़ती; तैसे ही ईश्वरकी कथा भक्तके मनमें बैठती जीवके मनमें नहीं बैठती परन्तु शिलामें जैसे टांकी- दिया जाता है; तैसे बद्ध जीवका भी अन्तःकरण के परमेश्वरको कभी २ सम्भारता है ।

———:o:———

संसारियोंका हृदय ईश्वरकी कृपासे सर पा के भी नहीं पलटता है ।

४) मलयाचलका वायु बह कर ठोस वृक्षको चन्दन- यत कर देता है परन्तु केला, बांस, इत्यादि तुच्छ उससे चन्दनवत सुगान्धित नहीं होते;(१) ऐसे ही जिन

करील श्रीखण्ड वसन्तहिं दूषण मृषा लगावैं ।
रहित हत भाग्य सुरभि पल्लव सो कहहु किमि पावैं ॥
विनय पत्रिका ।

मनुष्योंमें सार है, वे तो भगवत्की कृपासे क्षणभरमें अनीश्वरभावको त्याग कर के ईश्वरभावसे भरपूर हो जाते हैं पर संसारी विषयासक्तके पक्षमें उसका कुछ असर नहीं होता।

(२७५) ईश्वरमें मन एकाग्र हो के क्यों नहीं लगा रहता? तहां यह दृष्टान्त दिया जाता है—'देखो, विष्ठापर बैठनेवाली मक्खी कभी २ हलवाईकी दुकानमें मिठाईपर बैठती है। उसी समय यदि कोई मेहतरानी विष्ठाकी टोकनी लिये उधरसे जाती है तो वह मक्खी मिठाईको छोड़ उड़ कर गुहपर जा बैठती है परंतु मधुमक्षिका मधुपानमें मत्त रहती है; किंच—विषयी मनुष्योंका मन गुबरैले कीड़ेके समान है। गुबरैला गोबरहीमें रहता है। अन्यत्र उसे कहीं अच्छा नहीं लगता। हठसे यदि उसे कमलमें रख दो तो वह छटपटा कर मर जाता है; उसी प्रकार विषयी मनुष्योंकी भी दशा है। विषय छोड़ उन्हें और कुछ नहीं भाता।

(२७६) चैतन्य महाप्रभुने नित्यानन्दसे कहा—'भाई! मैं जीवोंको प्राणसे प्यार करता हूं तो भी उनसे कुछ नहीं होता। नित्यानन्दने कहा—'जीव स्त्रीसङ्ग करते हैं। अतः अब्रह्मचर्यसे उनमें सार नहीं रह जाता'। महाप्रभुने कहा—'सुनो भाई नित्यानन्दजी! संसारी जीवकी संसारसे मुक्ति कदापि नहीं होती'।

(२७७) गुरु, कृष्ण और वैष्णव ये तीनों दयार्द्र हुए, पर हाय केवल एककी उन्मुखता विना जीवका बिनाश भया क्योंकि मनके चञ्चल रहनेसे अर्थात् विषयमें मनके लिप्त रहनेसे उसकी भगवत्की ओर उन्मुखता विना साधुकी सङ्गति और उपदेश दोनों निष्फल हुए हैं।

संसारियोंसे धर्मप्रचार ।

---o---

(२७८) सब शृगालोंका रव एक ही प्रकारका होता है; ऐसे ही संसारासक्त ज्ञानियोंका धर्मप्रचार और धर्मोपदेश प्रकृतमें एक ही अर्थसे गर्भित है ।

(२७९) गिद्ध बहुत ऊपर उड़ता है पर उसकी दृष्टि हड़हे(हड्डी फेंकनेके स्थान)की ओर रहती है; ऐसे ही पुस्तक पढ़े अनेक पण्डित लोग बड़े२ ज्ञानकी बातें छांटते हैं पर उनके मनके भीतर चावल, केला, धनदक्षिणा, और आदर इत्यादिके पानेकी वासना वास करती हैं ।

(२८०) कौआ बड़ा चतुर होता है और कुदकना फुदकना तथा उचकना बहुत जानता है पर जन्मभर विष्ठा खा २ मरता है । फलतः अधिक चतुराई अथवा धोखेबाज़ीका परिणाम बहुधा कौएकासा ही होता है ।

---:o:---

संसारी मनुष्यका मन ।

(२८१) मक्खी जैसे कभी तनमें क्षत(व्रण)के ऊपर बैठती है और कभी देवताके नैवेद्यपर उड़ जा के बैठती है; ऐसे ही संसारी मनुष्यका मन कभी २ धर्मचर्चा करनेमें लगता है परन्तु पर क्षणमें स्त्री और सोनेके विषयमें बिल्कुल मग्न हो जाता है ।

(२८२) सहस्रों लात वा झाड़ू खानेपर भी बद्ध जीव

कनक कामिनीकी इच्छासे मनको खींच के ईश्वरकी ओर नहीं लगा सकता ॥

(२८३) एक सेर दूधम एक छटांक पानी मिला रहे तो थोड़ी आंच देनेसे उसका खीर पका सकते हैं और जो उसमें तीन पाव पानी मिला रहे तो खीर शीघ्र न पकेगी। बहुत देरतक उसे आंचपर चढ़ाये रखना पड़ेगा बरन अन्तमें खीर चाहे न भी पके; वैसे ही लड़कोंके मनमें विषयवासना बहुत थोड़ी होती है; इसकारण ईश्वरकी ओर लगानेसे वे सहजमें लग जाते हैं पर बूढ़ोंका मन विषयवासनामें डूबा रहनेसे ईश्वर उनमें शीघ्र नहीँ प्रवेश पाता।

———:0:———

संसारी मनुष्य इन्द्रियसुखोँको विशेष चाहते हैं।

(२८४) विषयी लोगोंको ब्रह्मानन्द न रुच कर विषयानन्द प्रिय लगता है। मथुरा बाबूने परमहंसजीसे अपनी भावसमाधि लगनेकी प्रार्थना की। स्वामीके अनुग्रहसे उन्हें ऐसी भावसमाधि लगी कि कोई डाक्टर उनकी समाधि न छुड़ा सका। कोई कहता था—भट्टाचार्य(परमहंस)के समान इनको भी समाधि लगी है। निदान उनकी वह समाधि पन्द्रह दिनतक लगी थी।

जब परमहंसजीने जा के उनके ऊपर अपना हाथ फेरा तब समाधि छुटी। समाधिसे जाग के मथुरा बाबू बोले—बाब,जी!

मैं इस भावावस्थाका अधिकारी नहीं हूँ। यदि मैं समाधि साधूँ तो मेरे बालबच्चे धनसम्पत्ति कैसे संभाल सकेंगे ।

(२८५) मक्खन उठा कर यदि दहीकी हंड़ियामें रक्खा जाय तो उससे गन्ध निकलता है परन्तु यदि वह कोरी नई हंड़ियामें रक्खा जाय तो गन्ध नहीं निकलता । तात्पर्य यह है कि संसारके बीचमें रह कर साधन कर के सिद्ध हो कर जो संसारहीमें रहते हैं, वे थोड़े मलिन हो जाते हैं परन्तु जो कि संसारको छोड़ के रहते हैं, वे अच्छे रहते हैं ।

(२८६) मनुष्यका मन सरसोंकी पोटलीसरीखा है। सरसोंकी पोटली जो एक वार खुल के सरसों छितर बितर हो जाय तो उनका बीनना कठिन है । ऐसे ही एक वार भी संसारमें मनुष्यका मन फैलनेपर पुनः उसे स्थिर करना कठिन है । लड़कोंका मन संसारमें फँसनेसे पूर्व ईश्वरमें लगाया जाय तो शीघ्र लगता है पर बुड्ढोंका मन संसारमें लिप्त रहनेसे ईश्वरकी ओर शीघ्र नहीं लगता ।

(२८७) जो पलरा भारी होता है, वह झुक जाता है परन्तु जो हलका होता है, वह ऊपर उठ आता है । विषयासक्त लोगोंकी अधोगति होती है । और विषयानासक्तोंकी उन्नति होती है ।

(२८८) संसार कैसा है ? वह आमड़ेके फलकी नाईं है। उसमें गूदा (सार पदार्थ) नहीं होता, गुठली और छिलका होता है । उसके खानेसे अम्लचुक्की आती है और शूल व्याधि उत्पन्न होती है । संसार उसी प्रकारका है ।

(२८९) संसारी मनुष्योंकी मुक्तिका उपाय केवल नाम ही

है। जैसे कुशियारे कीड़े स्वयम् कोश सृजन कर के उसमें आप फंस जाते हैं; तैसे ही संसारी जीव स्वयम् घरबार रच के उनमें आप बंध जाते हैं। इसके विपरीत तितली जैसे खोली तोड़ के उड़ भागती है; तैसे ही विवेकवैराग्यसम्पन्न मुमुक्षु घरसे निकल जाता है।

(२९०) चौकस जागते रहो तो घरमें चोरी न होगी।

(२९१) काग़ज़में तेल लगनेसे उसपर लिखते नहीं बनता; वैसे ही स्त्री और सोनारूपी मायाका स्नेह लगनेसे जीवसे फिर साधन करते नहीं बनता परन्तु तैललिप्त काग़ज़पर खड़िया मिट्टी घिस देनेसे लिखते बनता है; ऐसे ही जीवमें स्त्री और सोनारूपी माया का स्नेह लगा है। उसपर त्यागरूप खड़ी लगानेसे पुनः साधन करते बनता है।

(२९२) बन्दरका बच्चा अपनी माके पेटसे चिपका रहता है पर बिलारका बच्चा पड़ा २ 'मेओं' २ करता है। बन्दरका बच्चा माको हाथोंसे छोड़े तो गिर जाय क्योंकि वह माको पकड़े रहता है। बिल्ली अपने बच्चेको मुहमें लिये रहती है; इससे उसे गिरनेका डर नहीं रहता। तात्पर्य यह है-बन्दरका बच्चा पुरुषार्थ करता है पर बिल्लीका बच्चा मातापर भरोसा कर के रहता है॥

(२९३) बोदकर नाम एक प्रकारकी मकड़ी होती है। वह किसीको काटती है तो घावपर पहिले हरदीका पत्ता लगा के उसके विषका बल घटाना होता है। तिसके पीछे दवा लगाना होता है। तब दवाका असर पहुंचता है। इसी प्रकारसे कामिनी काञ्चनरूप मकड़ी जीवको बींधती है तो वैराग्यसे

त्याग संन्यास धारण करना पड़ता है। तत्पश्चात् भजन साधन करना होता है।

(२९४) जिस कोठरीमें ईश्वर बसा है, उसके किवाड़ उघाड़नेकी कुञ्जी उलटी घुमानी पड़ती है। इसका गूढ़ भावार्थ यह है कि ईश्वरकी प्राप्तिके लिये इस जगत्‌को वैराग्य-से त्यागना पड़ता है।

(२९५) प्रश्न—संसारी मनुष्य सब कुछ छोड़ कर भगवान्‌के निकट क्यों नहीं चले जाते ?

उत्तर—सवांग साज के रङ्गभूमिमें उतर कर कहीं कोई क्या तुरन्त वेषको उतार देता है ? नहीं; ऐसे ही संसारी मनुष्यको थोड़ी देर खेल खेल लेने देओ। उसके अनन्तर वह वेषको आप उतार फेंकेंगा।

———:o:———

ईश्वर और संसारका किस भांतिसे मेल मिलावें।

(२९६) प्रश्न—संसार और ईश्वर दोनों एक साथ कैसे सेवन किये जा सकते है ? उत्तर—एक स्त्री एक हाथसे ढेंकीमें चिउड़ा चलाती है और दूसरे हाथसे बच्चेको गोदमें ले के दूध पिलाती है। मुहसे चिउड़ेका लेखा लगाती है। तात्पर्य यह है कि वह अनेक काज करती है पर तो भी सावधान रहती है कि उसका हाथ ढेंकीसे न कुचले; ऐसे ही संसारमें रह के सब कार्य करो पर इस बातका ध्यान रक्खो कि ईश्वरके पथसे न हटो।

(२९७) घड़ियालको जलके ऊपर तैरना बहुत अच्छा लगता है पर वह क्या करे? मनुष्यके डरसे पानीके नीचे रहता है। ऊपर नहीं आता तो भी अवसर पानेपर हुसफुस करता हुआ कभी २ ऊपर आजाता है। हे संसारी जीव! सच्चिदानन्दरूप समुद्रमें तू वासकरना चाहता है। यह हम जानते हैं परंतु क्या करे; एक साथ स्त्रीपुत्रादि ने तुझको डुबा रक्खा है तौभी बीच २ में ईश्वरका नाम लेता रह। ईश्वरसे व्यग्रतापूर्वक प्रार्थना कर और अपना दुःख निवेदन किया कर। वह अवसरपाकर तेरा निस्तार करेगा।

(२९८) शव सिद्धि करनेमें अर्थात् मुरदेके जगानेमें मदिरा और चना पास रखना पड़ता है। साधन करते२ जब मुर्दा किसी समय मुख खोलता है तब उसके मुखमें चना और दारू डालनेसे वह शान्त हो जाता है पर यदि उसे चना और दारू न मिले तौ साधकके साधनमें हानि करेगा। संसारमें रह कर साधन करना चाहो तो संसार चलानेका व्यय इत्यादि पहिले ठीक कर लो, तब बैठो क्योंकि यदि ऐसा न करोगे तो साधनमें विघ्न पड़ेगा।

(२९९) बाउल*साधू जैसे दो हाथसे दो प्रकारके बाजे बजाता है और गाता है। हे संसारी जीव! तू भी हाथसे अपना काम कर पर सब समय मुंहसे ईश्वरका नाम लेता रह।

(३००) पुंश्चली स्त्री, माता पिता आदि परिवारके बीच रह के तनसे घरके काम धन्धे किया करती है पर उसका मन जार पर लगा रहता है। हे संसारी मुनुष्यो! ऐसेही माता पिता

* बाउल बंगाल में एक प्रकार के साधू होते हैं जो एक साथ गाते बजाते नाचते और ताला देते हैं।

आदि परिवारके बीच काम काज करते हुए तुम भी ईश्वरमें मन लगाए रहो ।

(३०१) धनी के घर में धाय माताके समान लड़के को पिलाती है पर मनमें जानती है कि बालक पर उसका कुछ अधिकार नहीं है, योंहीं तुमभी लड़कों का पालन पोषण यत्न पूर्वक करो यह मानते रहो कि उन पर तुम्हारा कुछ वश नहीं है ।

—:o:—

इन्द्रियोंको कैसे जीतें ?

(३०२) एक साधकने काम सम्बन्धी वार्त्तालाप के समय परमहंसजीसे पूछा कि महात्मा "मैं इतना धर्मालोडन करता हूं पर तौभी मेरे मनमें कुत्सित भाव क्यों उठते हैं ?" परमहंसजीने कहाकि एक मनुष्यने एक कुत्ता पाला था । जिसको वह सदा अपने साथ रखता और बड़ा प्यार करता था । कभी उसे गोदमें लेता था, कभी उसके मुंह पर मुंह रख कर बैठता था । थोड़े दिनके अनन्तर एक विद्वानने उसे ऐसा करते देख झिड़कके कहा कि कुत्तेका इतना आदर न करना चाहिये, यह अबोध पशु है, किसी दिन आदर करते २ तुमको झटसे काट खायगा । उसकी समझमें विद्वानकी यह बात आगई । और कुत्तेको फेंक दिया और प्रतिज्ञाकी कि अब उसे गोदमें कभी न लूँगा । परन्तु कुत्तेने उसके उस भावको न समझा । और अभ्यासानुसार पूर्ववत बार २ स्वामीकी गोदमें चढ़नेका यत्न करता । परन्तु स्वामी मार कर भगा देता था । योंही कुछ दिन मार खाते २ उस कुत्तेने स्वामीकी गोदमें चढना छोड़ दिया । तुम लोगों की भी यही दशा है । बहुत

दिनोंसे जिस कुत्तेको आदर करके उरमें लिये हुए थे वह अब हटाने परभी एकाएक न मानेगा । यद्यपि तुम्हारा दोष इसमें नहीं है तथापि कुत्ता तुम्हारे पास आवे तो उसका सन्मान मत करो प्रत्युत हटा दो । कुछ दिनमें वह अपने आप दूर भाग जायगा" ।

(३०३) किसीने पूछा कि काम क्रोध आदि रागों को कैसे जीतना चाहिये । तब परमहंसजीने कहाकि जब तक काम क्रोधादिराग पार्थिव विषयोंमें लगाये जाते हैं तब तक वे बड़े शत्रु हैं । लेकिन जब ईश्वर विषयमें ये राग लगाये जाते हैं तो वे बड़े मित्र हो जाते हैं । क्योंकि वे ईश्वर के पास पहुंचा देते हैं । पार्थिव काम को पार्थिव विषयोंसे छुड़ा कर ईश्वर विषयमें लगाना चाहिये । वह क्रोध जो मनुष्य पर करते हो ईश्वर पर करो तौ तुम्हारे संमुख प्रकाश क्यों नहीं होता । इत्यादि सब रागोंको ऊपर ले जाना चाहिये ।

(३०४) मनुष्यकी वासना कैसे दूर होती है ? फल लगने पर जैसे पुष्प स्वयं गिर जाता है, उसि प्रकार देवभाव बढ़नेसे मनुष्यपन दूर होता है ।

(३०५) पुस्तक पढ़ने से क्या भक्ति आप होती है ? पञ्चाङ्ग में लिखा रहता है कि बीस अंश वृष्टि होगी, पर यदि उसे (पञ्चाङ्ग को) निचोड़ो तो एक बुंद भी जल उसमेंसे न निकलेगा, ऐसेही पुस्तकमें भी धर्म वाहुल्यसे लिखा रहता है पर केवल पढ़नेसे धर्म नहीं होता, साधन करनेसे धर्म होता है अतः साधन ही मुख्य है ।

(३०६) दश बार गीता २ यों गीता का नाम उच्चारण करनेसे अर्थ पाठ होने लगता है, तथाहि गीता २ यों दशबार

पढ़ चलो तो गी, तागी, तागी, तागी इस प्रकार से तागी (त्यागी) रह जाता है। उसका अर्थ यह है कि हे विषयी! विषय सुख छोड़के अपना मन ईश्वर में लगा। अथात् त्यागी बन।

(३०७) मैदान का पानी किसी काममें नहीं आता वह घाममें आप सूख जाता है, ऐसेही पापी मनुष्य भी ईश्वरको आत्मसमर्पण करके परतन्त्र हो; जब उसकी दया का पात्र हो जाता है तब आप पवित्र हो जाता है।

(३०८) अहंकार का नाश कैसे हो? अहंकार की तीनि बातें है; (१) धान कूटते समय बीच २ में देखना पड़ता हैं कि धान ठीक कूटा जा रहा है वा नहीं, यदि भूसी नहीं निकलती है तो पुनः २ धान को कूटना पड़ता है, (२) तोलते समय तराजू को देखना पड़ता है कि पलड़े ठीक सम हुए वा नहीं, यदि ठीक नहीं हुए तो उनके ठीक होने तक देखना पड़ता है, (३) परमहंसदेव आपही अपने को गालियां देकर देखते हैं कि अहंकारसे वह बुरी लगती है कि नहीं वे विवेकसे विचार देखते हैं कि यह शरीर क्या है! शरीर हड्डियों का बना लोहू पीब चाम की टोकनी है। इसके लिये इतना अहंकार क्यों? प्रसिद्ध टोकनी की विष्ठाको तो मेहतर एकबार उठा ले जाता है पर शरीर रूपी टोकनीमें तो प्रतिक्षण विष्ठा भरा रहता है। उस पर इतना अहंकार क्यों?।

—:o:—

ब्रह्मज्ञानकी मुक्तिदायिका शक्ति।

(३०९) हाथमें तेल लगाके कटहलका फल चीरना पड़ता है, ऐसेही मनुष्य को चाहिये कि ज्ञान और भक्ति रूपी तेल लगाके संसारके कार्य करे।

(३१०) हाथमें तेल लगाके कटहलका फल चीरनेसे हाथमें उसका लस नहीं लगता। वैसेही ज्ञान प्राप्त होने पर संसारमें रहके भी मनमें स्त्री और सुवर्णकी मलिनता नहीं व्यापती।

(३११) अद्वैत ज्ञानको ठेंटमें बांध ले फिर जो चाहे सो कर, तात्पर्य यह है जिसका अद्वैत ज्ञान पका हुआ है उसे फिर कोई दोष स्पर्श नहीं करता है और न उससे कोई खोटा काम बन पड़ता है।

———:o:———

पहिले ईश्वरकी प्राप्ति करो। पश्चात् संसार का सेवन करो।

(३१२) लड़के जैसे खूटी पकड़के दनादन घुमते हैं, गिरने से नहीं डरते। इसी प्रकारसे संसारमें ईश्वरका आश्रय ले कर कार्य करो अक्षत रहोगे। किसीसे परमहंसजी बोले-पहिले संसारी हो चुके हो तब भगवानकी पानेके लिये आये हो। पहिले परमेश्वरको पाते पीछे संसारमें रहते तो अच्छा होता।

(३१३) पश्चिममें हिन्दुस्थानी स्त्रियां अपने २ शिर पर एक संग तरऊपर चार २ पांच२ गगारि धरके वाटमें सखियोंके साथ परस्पर वातचीत करती, सुनती सुनाती चली जाती है पर उनका मन गागरों पर लगा रहता है कि कोई गिर न पड़े। ऐसेहि धर्म मार्गमें यात्रियोंको सब अवस्थामें विशेष सावधान रहना चाहिये जिससे धर्म पथसे विचलित न हों।

(३१४) एक किसान दिनभर ईखका खेत सींचता था, पर सांझको उसने देखा तो एक बुँदभी जल खेतमें न पाया, कारण यह था कि दूर पर अनेक गड्ढे थे उन्हींमें जल चला जाता था, इसी प्रकार जो जन संसारी विषय वासना, मान प्रतिष्ठा और स्वच्छन्द सुख विलास चाहता हुआ भजन करता है उसकी गति किसान कीसी होती है, क्योंकि जन्मभर वह निरन्तर भजन करकेभी अन्तमें देखेगा कि वासना रूपी छिद्रके द्वारा भजनका फल व्यर्थ निकल गया है । वह अबतक पूर्ववत् जैसेका वैसा मनुष्य बना है । तनिकभी अपनी उन्नति नहीं कर सका ।

(३१५) जो अपने मनके भावको चुराता (छिपाता) है, वह सिद्धिको प्राप्त नहीं होता ।

(३१६) मन का विचार और मुखका बचन दोनोंको एक करना यही ठीक साधन है; नहीं तो मुहमें कहोगे कि ईश्वर हमारा सब कुछ (सर्वस्व) है पर मनमें विषयको ही अपना सब कुछ मानोगे । जो लोग ऐसा करते हैं उनका सब साधन व्यर्थ है ।

(३१७) पानीमें नाव रहना सर्वथा ठीकही है पर नावमें पानीका रहना नहीं बन्ता । साधक संसारमें रहै तो कोई हानि नहीं है पर साधकके मनमें संसारके होनेसे हानि है ।

(३१८) घड़ेकी पेंदीमें जो छेद हो तो उससे सब जल बह जाता है, ऐसेही साधकके मनमें जो थोड़ीसीभी विषयवासना रहै तो सब साधन श्रम वृथा जाता है । वह क्या भक्त है ? जो संसारी वस्तुकी कामना रखता है ।

(३१९) मनुष्यका शरीर हाँड़ी है। उसमें मन बुद्धि और इन्द्रिय मानो जल चावल और आलू हैं। हाँड़ीमें जल चावल और आलू डालकर नीचे अग्नि जलानेसे जैसे वे तीनों गरम हो जाता है, उनमें हाथ डालनेसे हाथ जल जाता है सत्य है पर वह दाह शक्ति उन तीनोंमेंसे एकमेंभी नहीं है किन्तु अग्निमें है। योंही मनुष्यके शरीरके भीतर ब्रह्म शक्ति जबतक प्रयुक्त रहती है, तबतक मनुष्यके मन बुद्धि और इन्द्रिय चैतन्य कार्य करते हैं अन्तमें उस शक्तिका जब अन्तर्धान हो जाता है तब मन, बुद्धि और आंख, नाक; कान, इत्यादि कार्य नहीं करते हैं।

———:o:———

साधकको संसारी मनुष्योंसे मिलना न चाहिये

(३२०) जलमें दूध मिलानेसे दोनों मिल जाते हैं; फिर अलग नहीं होते, इसी प्रकार नये धर्मेच्छुजन सब प्रकारके संसारी लोगोंसे विना रोक टोक मेल रख करके अपना धर्म साधन नाश करते हैं; तब उनको पूर्ववत् न श्रद्धा रहती है, न भक्ति रहती है न उत्साह रहता है। वे सबके सब धीरे २ बिना जाने निकल जाते हैं।

(३२१) मक्खन निकालके जलकी हँडियामें रखने से एकाएक बिगड़ता नहीं, पर दही की हाड़ीमें रखने से बिगड़ जाता है, ऐसेही सिद्ध होने पर संसार में रहने से मलिनता व्यापती है पर बाहिर चले जानेसे बिलकुल सफाई रहती है।

(३२२) काजलकी कोठरी में कैसाही सयाना जाय काजलकी लीक उसके लगैहीगी, इसी प्रकार जवान स्त्रीके

साथ रहकर चाहे मनुष्य कितनाही सावधान क्यों न हो उसका कामोद्दीपन होवेहीगा ।

———:०:———

दुर्जनोंके संसर्गसे बचो ।

(३२३) सत्य है कि बाघमेंभी ईश्वर है पर बाघके सामने न जाना चाहिये ऐसेही खोटों मे भी ईश्वर है पर खोटों का सङ्ग खोटाही है ।

(३२४) सिद्धाई* के नाम से परमहंसदेव अति अप्रसन्न होते थे। कहीं वे सुनते कि कोई साधक किसी सिद्ध के निकट सिद्धाई के निमित्त आता जाता है तो वे उसे यह कहकर बर्जते थे कि उस सिद्ध के पास जाना ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा करने से सच्चिदानन्दस्वरूप परमेश्वरके पादपद्मसे मनुष्य दूर हटकर सिद्धिलाभ की वासनामें आसक्तचित्त हो जाता है ।

(३२५) छोटे २ पेड़ोंको पहिले थांवला बांधके बचाना पड़ता है, नहीं तो गौ बकरी आदि आकर चर जावेंगी, परन्तु जब वृक्ष बढ़ जाता है तब उसे उनका भय नहीं रहता । उस समय सैकड़ों भेड़ और गौ आकर उसके नीचे विश्राम लेतीहैं और उसके पत्तों से अपने पेट भरती हैं; साधना के पहिले दुष्टों की संगति और संसारी बुद्धिसे बचना चाहिये क्योंकि यदि ऐसा न करोगे तो तुम्हारा धर्म साधन निष्फल हो जायगा, परन्तु एक वार साधनमें सिद्धि होने पर पुनः भय नहीं रहता, सहस्रों दुष्टों की संगति उस समय तुम्हें न बिगाड़ सकेगी वरन बहुतेरे लोग तुम्हारे पास आनेसे संतुष्ट होंगे ।

* सिद्धाई जैसा पिशाचसिद्धि, योगिनीसिद्धि, बेतालसिद्धि इत्यादि; सिद्धाई शब्द इन्हीं अर्थोंमें स्थान २ में लाया गया है ।

साधकको निर्जन एकान्त स्थान सेवन करना चाहिये।

---:o:---

(३२६) कोई भक्त परमहंसदेवजीके पास एक दिन आया। उन्होंने उससे कहा कल तेरे केशवचन्द्सेन आये थे। उनके साथ बहुत लोग थे। वे बड़के पेड़की छाया में बैठ कर बहुत बातचीत करते रहे। कामिनी और काञ्चन त्याग न करने से कुछभी सिद्धि नहीं होगा। यह बात सुन कर उनमें का एक मनुष्य बोला—" क्यों महाराज ! जनक राजाने तो त्याग नहीं किया ? " स्वामीजीने कहा—'हां युग २ से जनक राजा का नाम आज तक चला आता है कि उन्होंने निर्लिप्तभाव से संसार चलाया था, परन्तु अब देख रहे हैं कि आजकाल के लोगों के घर २ में मानो जनक राजाही विराजमान हैं।

(३२७) जो लोग भजन करने पर हँसते हैं, वा धर्म और धर्मात्मकी निन्दा करते हैं, उनसे साधनके समय सर्वथा अलग रहना चाहिये।

(३२८) हाथी स्नान करता है तो मल २ कर शरीर निर्मल करता है पर बाहिर निकलके फिर धूलिसे मैला कर लेता है, शरीर धोके निकलते ही यदि वह घर के भीतर रक्खा जावे तो शरीर मैला न करने पावेगा, ऐसही संसारमें चाहे जितनी पवित्रता करो पर पुनः मैले होजाओगे, मनको पवित्रकरके ईश्वरमें लगा देने से तुम पवित्र हो जाओगे, पर संसार में जो शरीर से उच्छृङ्खल रहोगे तो मैले हो जाओगे।

जिसका मन शुद्ध होता है, वह ईश्वर को प्राप्त करता है।

---:o:---

(३२९) जैसे दर्पण मलिन होने से उसमें मुखकी छाया नहीं पड़ती तैसेही मन मलिन होने उसमें ईश्वरकी झांकी नहीं होती। हां मैल पोंछ देने से दर्पणमें जैसे मुख दीखता है, वैसेही मन के निर्मल होने पर परमेश्वर दर्शन देता है।

(३३०) संसारमें रहके जो साधना कर सकते हैं, वे सच्चे पराक्रमी साधु हैं।

(३३१) तैरना सीखनेमें बहुत दिन हाथ पांव इधर उधर फेकने पड़ते हैं। तुरन्त ही तैरना नहीं आ जाता, ऐसही ब्रह्म-सागर में मज्जन सीखने के लिये बहुतवार गिरना पड़ता है एकाएक ब्रह्मसागर में नहीं तैर सकते।

(३३२) बछड़ा पहिले बीसों बार गिरता है तब खड़ा हो सकता है। ऐसही साधन करने में भी बार २ गिरके उठने पर सिद्धि का मुख देखने में आता है।

---:o:---

प्रकृत धार्मिक।

(३३३) एकान्त में भी "भगवान मुझे देखता है" यह बिचार कर जो लोग पाप नहीं करते वे ही यथार्थ धार्मिक हैं तथाहि सूने मैदानमें तरुणी सुन्दरी कामिनी को देखके धर्मके भयसे जो उसको कुदृष्टिसे नहीं ताकते वे ही वस्तुतः धार्मिक

हैं। जो सबके सामने केवल दिखानेको धर्माचरण करते हैं वे प्रकृत धार्मिक नहीं हैं। सूने अँधेरेमें जहां कोई नहीं देखता वहां ईश्वर और अपने आत्मा पर दृष्टि रखके धर्मानुष्ठान करना वास्तविक धर्मका लक्षण है।

(३३४) काच पर पारेके लेपसे दर्पण बनके उससे देखने से जैसे मुख दीखना होता है वैसेही ब्रह्मचर्य (वीर्य) धारण करने से अन्तःकरणमें ब्रह्म प्रकाश होता है।

(३३५) किया पाप और खाया पारा छिपानेसे नहीं छिपता।

(३३६) जैसे चकंव का साग साग नहीं है, मिश्रीकी मिठाई में गिनती नहीं, प्रणव ओंकार अक्षर नहीं है ऐसेहीं भक्तिकी कामना कामना नहीं है क्योंकि सबका उपकार छोड़के किसी का अपकार नहीं होता।

(३३७) शरीर की ममता कैसे घटती है ? मनुष्य हाड़, मांस, पीब, लोहू, विष्ठा, मूत, ईत्यादि का ठीकरा है, यदि इस बात का बिचार करके घिन कर मनमें बैराग्य लाओ तौ शरीर की ममता मिट जाती है।

(३३८) विषय की चाह कैसे हटे ? अपरम्पार सच्चिदानन्द निरवधि सुखकी राशी है। उस सुखका जो लोग उपभोग करते हैं उन्हें फिर विषय सुख अच्छा नहीं लगता।

(३३९) मेडकीकी पूँछ जब गिरजाती है तब वह मेडक हो जाता है और जल थल दोनोमें समान भावसे रहने लगता है, ऐसेही जीवकी अविद्यरूपी पूँछ जब गिरजाती है तौ उसकी मुक्ति हो जाती है। उस समय वह संसारमें रह करभी सच्चिदानन्दमें निवास कर सकता है।

(३४०) बालू में शक्कर मिली रहती है चींटी बालू छोड़ के उसे चाट लेती है; ऐसेही साधु सन्त और परमहंस लोग अशुभ को त्याग कर शुभ को संग्रह करते हैं और उनकी यही पहिचान है ॥

तवस्वी ।

(३४१) मनुष्य कामिनी और कञ्चन रस में लिप्त हो रहे हैं। बिना इस रस के नाश हुए ईश्वर लाभ नहीं हो सकता ॥

(३४२) लावा भूंजते समय जो २ चावल चटक के बाहर गिर जाता है उसमें दाग नहीं रहता और जो खपड़े में रह जाता है वह लावा हो जाता है पर दागी रहता है, ऐसेही साधन करते हुए जो संसार के बाहर हो जाते हैं वे पूरी निष्कलङ्क सिद्धि पाते हैं परन्तु संसार में रहके जिन्हें सिद्धि मिलती है उनमें कुछ न कुछ कलङ्क की रेखा रह जाती है ॥

(३४३) आज कल के बैरागीके क्या लक्षण हैं ? जो पुरुष माता पिना बा स्त्री के साथ झगडा करके विरक्त होके बाहिर निकल जाता है उसे आजकाल बैरागी कहते हैं। वह दो दिन का विरागी है । जो उसे कहीं नौकरी मिलै तौ उसका बैराग्य कोसों दूर भाग जाता है वह फिर बैराग्य छोड़ नौकरी कर घर आजाते हैं ।

---:o:---

सच्चे और झूठे साधू ।

(३४४) वास्तव में जीव भगवान् को चाहता है कि नहीं

यह जानने के लिये भगवान उसका धन पुत्रादि नाशकर परीक्षा करते हैं। धन आदि का नाश होने परभी जो व्यक्ति (पुरष) धीरजधारणकरके ईश्वर के भजनभाव में स्थिर रहता है वही भाग्यवान् उनकी प्रसन्नताको प्राप्त करता है।

„जो कोई करे मेरी आशा, करूँ उसका सर्वनाशा।
तिसपर भी यदि करे आशा, पूरण करूँ उसकी अभिलाषा॥"

(३४५) जैसे कसौटी पर पीतल है कि सोना यह साव्यस्थ (सावित) हो जाता है, वैसेही ईश्वरके समीप सरल किम्वा कपटी साधुकी परीक्षा हो जाती है।

(३४६) जैसे सर्प से लोग दूर बचे रहते हैं, वैसेही कामिनीके सन्मुख कभी न जाना चाहिये। क्योंकि कामिनी से बढ़ कर प्रलोभन (लुभाने) की दूसरी और कोई वस्तु नहीं है, लालचमें पड़कर शिक्षा लेनेकी अपेक्षा उसके संसर्ग से हटे रहनाही अच्छा है।

(३४७) संसार का सार—ईश्वर, असार कामिनी और कञ्चन है। ईश्वर ही नित्य है। वही थे और वही रहेंगे। कामिनी और कञ्चन था भी नहीं, रहता भी नहीं और रहेगा भी नहीं।

(३४८) मन पहिले पूरा रहता है। फिर विद्याशिक्षा में दो आना भर, स्त्रीमें आठ आना भर, पुत्र कन्यामें चार आना भर और विषयमें दो आना भर, इस प्रकार बँट जाता है। समय पाकर किसी का मन अपना नहीं रहता और वे दूसरे ही के मनसे काम किया करते हैं।

(३४९) जैसे, जिस घर में काल सर्पका वास है उस घर में रहने से सदा मन भय भीत रहता है वैसेही संसार को जानना।

(३५०) अमली होय धरे जो ध्यान ।
होय गृहस्थ बतावे ज्ञान ॥
योगी होय भोग मन दीन ।
यह तीनों कलिमल ठग चीन ॥

(३५१) जो एकबार इन्द्रिय सुखका आस्वादन कर चुके हैं, उनका फिर वह भाव उद्दीपन न हो इस प्रकार सावधानतासे रहना चाहिये । कारण कि आँखो से देखने पर और कानोंसे श्रवण करने पर मनमें चञ्चलता होती है । एकबार मनमें किसी प्रकार का संस्कार उत्पन्न हो जाने पर उसको वह चिर जीवन तक नहीं भूलता । एक दिन एक बधिया बैल को एक दूसरे बैल पर चढ़ता देख खोज करने पर उसका कारण जाना गया कि वह जिस समय बधिया किया गया था, उससे पूर्व उसको संसर्ग ज्ञान हो गया था ।

(३५२) जो साधू होके जीविकार्थ औषधि बांटे अथवा नशाके लिये मादक पदार्थ खावे वह साधु नहीं किन्तु झूठा साधू है । उसके साथ रहना न चाहिये ।

(३५३) जैसे जूता पहिनके कँटीले पथ पर स्वच्छन्दतासे चले जाते हैं । वैसेही तत्त्वज्ञानरूप आवरण द्वारा संसार में मन संरक्षित रहता है ।

(३५४) लाख में कोई एक सिद्ध होता है । किन्तु जितने जन साधन करते हैं वे सब सिद्ध नहीं होते ।

—:o:—

जीवों के दशा भेद ।

(३५५) बहुतसी मछलियां जाल में फसती हैं । पर

उनमेंसे बहुतेरी भागनेका कुछ भी यत्न नहीं करती किन्तु फसी रहती हैं (१) कोई २ भागके प्राण बचाने का प्रयास पाती है पर भाग नहीं सकती हैं (२) वरु वे थोड़ी मछलियां होती हैं जो जाल फाड़ कर भाग जाती हैं (३) ऐसे ही इस संसार में तीनि प्रकार के जीव होते हैं, वद्ध, मुमुक्षु और मुक्त।

(३५६) कच्ची हांडी टूट जाती है तौ कुम्हार उसकी मिट्टीसे दूसरी हांडी बना लेता है पर पक्की हांडी टूटने पर उसकी मिट्टीसे हांडी नहीं बन सकती, वैसेही अज्ञानअवस्था में मरनेसे पुनर्जन्म होता है पर ज्ञान प्राप्त होने पर मरनेसे ज्ञानी को पुनर्जन्म नहीं होता।

(३५७) कितनी एक जातिकी ऐसी मछलियां बहुत होती हैं जिनके शरीर में बहुत से कांटे होते हैं और थोड़ी ऐसी हैं जिनके एकही कांटा होता है। ऐसेही ऐसे मनुष्य बहुत हैं जो अधिक पापी हैं। ऐसे थोड़े हैं, जो थोड़े पापी हैं।

(३५८) जीव तीन प्रकार के होते हैं (१) मुक्त, (२) मुमुक्षु (३) एवं वद्ध। इसके सिवाय नित्य जीवभी है। जो नित्यजीव हैं वे आचार्य्यका कार्य्य करते हैं।

(३५९) सबेरेही मक्खन निकालना चाहिये। क्योंकि दिन चढ़ने पर अच्छा मक्खन नहीं निकलता। ऐसेही बाल्यावस्थामें मनुष्यका मन सहजसे ईश्वरकी ओर लगाया जा सकता है। बूढ़ा होने पर नहीं लगता।

(३६०) जैसे भुँजे धानके बीजसे पेड़ नहीं उगता, किन्तु कच्चे धानके बीजसे अंकुर निकलता है, वैसेही सिद्ध होके मरने पर फिर जन्म नहीं होता, हाँ असिद्धावस्थामें मरने पर पुनर्जन्म होता है।

(३६१) प्रकृतिके सत्त्व, रज, और तम इन तीनि गुणों के भेदसे मनुष्य की प्रकृति भिन्न २ प्रकारकी होती है । *

(३६२) नमक, कपड़ा और पत्थरकी पुतली एकसाथ समुद्रमें फेंक देनेसे नमककी पुतली तुरन्त जलमें गल जायगी (१) कपड़ेका पुतली जलसे भीगि तो जायगी पर वह जलमें न गलैगी उसे जब चाहो जलसे निकाल सकते हो (२) पर पत्थरकी पुतलीमें जल प्रवेश ही न कर सकेगा (३) वैसेही मुक्त पुरुष नमककी पुतली, मुमुक्षु पुरुष कपड़ेकी पुतली और वद्ध जीव पत्थरको पुतली है ।

(३६३) पेड़किया (कचौरी) मैदे की बनती है पर उस में पिट्टी के भराव के भेद से स्वाद में भेद होता है, ऐसेही मनुष्यों का देह समान मात्राओं से बना है पर मन की पवित्राके तारतम्य अनुसार वह शुचि वा मैला माना जाता है ॥

——:o:——

अध्यात्म लाभ हृदयकी शुद्धतासे होता है

(३६४) जिसका जैसा भाव रहता है उसे वैसा ही फल मिलता है । तथाहि दो मित्रोंने घूमते २ देखा कि कहीं भागवतकी कथा होती है । उनमें से एकने कहा—चलो भाई ! वहां चलके भागवत सुनें । दूसरा बोला नही भाई ! भागवत सुनके क्या होगा । चलो उतनी देर वेश्याके घर चलके सुख विलास करें । पहिले मित्रने यह बात नहीं मानी किन्तु वह

* भगवद्गीता १४ अः पृ १६; १६ अः १–२४; १७ अः १–२२ और १८ अः ७-९ तथा १८–४० वीं में सत्त्व, रजस्, तमस, तीनों गुणों का वर्णन है ॥

जाके भागवत सुनने लगा। दूसरा वेश्याके घर पर गया परन्तु वेश्याके घरमें उसको विलास से संतोष लाभ न हुआ। वह मनमें केवल यही सोचता रहा कि "हाय मैं यहां क्यों आया? मेरा मित्र वहां न जाने कितना भगवद्गुणानुवाद सुनता होगा?" पहिला जन जो भागवत सुनने बैठा उसे कथा न रुची वहां बैठके वह अपने मनमें यह कहने लगा अहो मैं भी अपने मित्रके साथ क्यों न चला गया। न जाने वह वेश्याके साथ कैसे सुख विलाससे काल व्यतीत करता होगा। अन्तमें इन दोनों का परिणाम ऐसा विपरीत हुआ कि भागवत सुनने वाले को वेश्याके घर जाने का फल मिला और वेश्याके घर जाने वाले को भागवत सुनने का फल प्राप्त हुआ।

———:o:———

मन और बुद्धि की शक्ति।

(३६५) नहीं २ कहनेसे कुछ हाथ नहीं आता। जो लोग सभी बातको नहीं २ करते हैं जानो वे भले मानस नहीं हैं।

(३६६) जैसा तुम्हारा भाव है, वैसा फल मिलेगा। भगवान् कल्पवृक्षके समान हैं। जो जैसा चाहता है उसे वे वैसा ही फल देते हैं। दीन जनका सन्तान विद्याभ्यास करके जज होके अपने मनमें समझता है मैं सुखी हूँ। भगवानभी तब कहते हैं तुम जैसे हो, वैसेही बने रहो। तत् पश्चात जब वह पैन्शन लेके घरमें रहने लगता है तब बिचारने लगता है मैंने इस जीवनमें क्या किया, तब भगवान्‌भी कहते हैं हां! ठीक कहते हो तुमने क्या किया। अर्थात् कुछ नहीं किया।

(३६७) मूली खानेसे मूलीके रसकी डकार आती है। और खीरा खानेसे खीरेके रसको डकार आती है ऐसेही जिसके मनमें जैसा भाव रहता है वैसाही प्रगट होता है।

(३६८) एक जमींदार किसी का कर्ज मार लेने के इरादेसे जान बूझकर पागल बना। वैद्य, डाक्टर कोई उसको इलाज करके अच्छा नहीं कर सका पीछे एक बिज्ञ चिकित्सक ने उसे देखके कहा "महाशय। आप यह क्या कर रहे हैं? नकल करते २ पीछे कहीं असल पागल न हो जाओ क्योंकि मैं बहुत दिनसे देख रहा हूँ कि आपमें बहुतसा पागलपन आगया है"। उस सुवैद्यकी यह बात सुनकर उस पुरुष को चैतन्यता हुई। उसने पागलपन छोड़ दिया। तात्पर्य यह है सर्वदा कोई बहाना करने से क्रमसे उसी प्रकार का भाव जीवको प्राप्त हो जाता है।

(३६९) बहुतेरे लोग मिथ्या विनीत भाव दिखा करके कहा करते हैं—"हम कीटानुकीट हैं" कीट २ करते २ कुछ दिनके अनन्तर सचमुच वे लोग कीटप्राय हो जाते हैं। मनमें कभी निराश न होना। निराश भग्नोद्यम होने से धर्म्म के पथमें कभी अधिक आगे नहीं बढ़ सकोगे। जिसकी जैसी भावना तिसकी तैसी सिद्धि।"

(३७०) कल्पवृक्षकी छायामें बैठि मनुष्य अपने मनमें कहने लगा—मैं राजा होउँ? सो वह राजा हो गया। तब उने मांगा एक सुन्दरी पाउँ। सो उसने उसी समय सुन्दरी स्त्री पाई। तदनन्तर उसके मनमें यह भाव उदय हुआ बाघ आके मुझे खाले। सो उसी समय बाघने आके उसे खा लिया।

भगवान के निकट रहके कुछ नहीं मिला ऐसा बकना अनुचित है।

(३७१) अपनेको जो जीव जानता है, वही जीव है और जो आत्माको शिव समझता है, वह शिव है।

(३७२) हाथी को छोड़ देनेसे वह सब दिशाओं के झाड़ झुँड़ पेड़ कुचल कर चला जाता है। परन्तु अंकुशके प्रयोगसे वह सीधा चलता है। मनको स्वतन्त्र करनेसे वह नाना प्रकारके भले बुरे विचार करता है परन्तु विवेकके आंकुशसे शान्तिमान हो जाता है।

———:o:———

विवेक और वैराग्य।

(३७३) यदि विवेक और वैराग्य उदय न हुए तो शास्त्र पढ़ना व्यर्थ है विवेक और वैराग्य विना धर्म नहीं सध सकता। गुण दोष की विवेचना और देहसे आत्माको पृथक जानना अथवा प्रकृति और पुरुषका भेद जानना विवेक है। विषयमें मनका फीका होना तथा कनक और कामिनीकी चाह छोड़ना वैराग्य है।

(३७४) जो मनुष्य अपने आत्माको पहचान सके तो अन्यको भी वह ईश्वर जान सके। हम कौन हैं? हाथ, पांव, रक्तमांस, और आत्मा इनमेंसे हम कौन हैं? अच्छे प्रकार से सोचने से जान पड़ता है कि हम इन में से कोई भी वस्तु नहीं हैं। प्याज का छिलका छुड़ाते २ जैसे प्याज नाम की कोई वस्तु कुछ भी शेष नही बचती, तैसे विचार करने से " हम " यह

मिथ्या समझ पड़ता है विवेचना करनेसे अन्तमें जो शेष बचता है, वही ईश्वर सबमें सार है । हम अर्थात् अहङ्कार दूर होनेसे जीवको ईश्वरका साक्षात्कार होता है ।

(३७५) सच्चिदानन्दमय समुद्रमें मग्न होना चाहिये, पर यदि काम क्रोध आदिक घड़ियालके पकड़ने से डरो, तौ विवेक वैराग्य रूपी हलदी लगाके गोता मारो ।

(३७६) घोड़े की आंखें अगल बगल न ढकनेसे वह ठीक सीधा नहीं जाता उसी प्रकार ज्ञान और भक्ति अवलम्बन कर संसार पथ पर चलना सीखने से दिक्भ्रम वा कुपथ पर नहीं जा सकता ।

(३७७) दैवात् किसी निकम्मे स्थानमें जाना पड़े तौ आनन्दमयी माताभगवतीको मनमें साथ लिये रहो, वहां जो कोई कुत्सित (बुरे) कार्य करनेकी तुम्हारी इच्छा भी होगी तौ माता आप शिशुकी रक्षा करेगी । माताके साथ रहनेसे लज्जा से नीच कार्य न कर सकोगे ।

(३७८) वैराग्य कितने प्रकार का होता है । उत्तर—वैराग्य साधारणतः दो प्रकार का होता है (१) तीव्र और (२) मन्द तीव्र वैराग्य रात्रि भरमें कुआ खोदके जल लानेके समान है, पर मन्द वैराग्यवाला कहता है, होने दो, चाहे जब हो ।

(३७९) वैराग्य किस रीति से करना चाहिये ? उत्तर—स्त्रीने अपने पतिसे कहा, हमारे भाईभी सन्यासी होंगे । आज कई दिन से यत्न करते हैं । तब पतिने कहा बावली वह कभी संन्यासी न हो सकेगा, सन्यासी होनेके लिये कोई प्रबन्ध नहीं करना पड़ता । स्त्रीने कहा तब कैसे होता है ? पतिने कहा

सन्यास कैसे होता है, यह देखना चाहती है ? इतना कहके पतिने कपड़ा फेंक लँगोट लेके घर से चल दिया।

(३८०) एक मनुष्य तनमें तेल लगाके न्हाने जाताथा। मार्गमें उसने सुनाकि अमुक जन सन्यासी होनेका यत्न करते हैं। यह सुन उसे यथार्थ बोध हुआ कि सन्यासी होनाही जीवनका मुख्य कर्तव्य है। अतः उसी समय वह तनमें तेल लगायेही सन्यासी होने चलागया और फिर घरको नहीं लौटा बस यही उत्कठ वराग्यै है।

—:o:—

धर्मपुस्तकका पढ़ना।

(३८१) ग्रन्थ, ग्रन्थ नहीं है किन्तु ग्रन्थि है।

(३८२) जो थोड़ी अङ्गरेजो पढ़ा होता है वह बात २ पर अङ्गरेजो बोलता है पर जिसने बहुत पढ़ी है उसके मुखसे अङ्गरेजी नहीं निकलती है। धर्म शिक्षा के विषय में भी यह बात घठती है।

(३८३) जिससे तत्वज्ञान प्राप्त होता है उसे शास्त्र कहते हैं। तत्वज्ञान के विरोधी ग्रन्थ अशास्त्र श्रेणीके अन्तर्गत हैं।

—:o:—

कौन जन आत्मज्ञान नहीं कर सकते हैं।

(३८४) कोई साधक एक समय योग साधन करने के निमित्त असन्त व्याकुल हुआ। परमहंसदेव एक दिवस उसके

मकान पर जाकर एक छोटी बालिकाको देख कर बोले कि क्यों जी यह लड़की किसकी है? साधक ने बिनीत भावसे कहा कि जी! मेरी है। परमहंसदेव बोले ठीक २ तुम्हारा तौ अच्छा योग सधा है। फिर तुम क्यों योग २ करके व्याकुल भये हो। यह सुनने में आता है कि उसी दिन से उस साधक ने स्त्री संग सर्वथा त्याग कर दिया।

(३८९) एक समय एक ब्रह्मसमाजी किसी युवापुरुष की परमहंसजीमें अत्यन्त प्रीति देखके वह बूढ़ा ब्रह्मसमाजी युवा के सामने परमहंसजीकी अनेक प्रकारसे निन्दा करने लगा "परमहंसजी पागल हैं, उनकी बुद्धि ठिकाने नहीं है एकही विषयका बिचार निरन्तर करते २ उनका दिमाग विगड़ गया है। बिलायतमें भी बहुतसे ऐसे लोग मिलते हैं जिनका दिमाग (मस्तिष्क) एकही बिषयको सर्वदा सोचते २ बिगड़गया है। वही बात परमहंसजीके सम्बन्धमें भी सत्य समझना चाहिये"। निदान उसकी यह बात धीरे २ परमहंसजीके कानतक पहुँची। तब उन्होंने उस बूढ़ेको अपने पास बुलाया, वृद्धने उनसे कहला भेजा कि 'मैं आपसे अमुक दिन मिलूंगा'। संयोग वश उस दिन वह परमहंसजीके पास न पहुँच सका। परमहंसजीने तब फिर बुलवाया। उसने पुनः दिन नियत करके कहला भेजा कि "अमुक दिन आऊँगा"। दैवात् किसी कार्यवश वह उसदिन भी न आ सका। उसके उपरान्त बहुत दिन पीछे वह बूढ़ा परमहंसजीके पास आया। उसे देख परमहंसजी बोले—"क्यों जी! तुमने मेरे विषयमें क्या कहा था कि मेरा मस्तिष्क वि-कृत हो गया है। मेरा माथा बिगड़ा हो वा न विगड़ा हो परन्तु देखो मैं जिसके पास जिस दिन जाने को कह देता हूँ अव-

"यही उस दिन जाता हूँ और तुमने दोवार यह कहला भेजा कि अमुक समय पर आऊँगा पर नहीं आये। वृद्ध ब्राह्मप्रचारक महाशय यह सुन के मौन होगये। परमहंसजी पुनः बोले 'तुमने जो विलायती विज्ञानियों का प्रस्ताव सुनाया था वह जानते हो कि वे किस विषयका विचार करते २ पागल हो गये हैं। बतलाओ जड़ क्या और चैतन्य क्या जड़ वस्तुका जो चिन्तन करते २ बावले हो जांय तो इसमें क्या अचरज है परन्तु जिसकी चैतन्यतासे जगत चैतन्य है उस चेतनके विषय में विचार करने से कभी कोई पागल हो सकता है। क्या तुम्हारे ज्ञानग्रन्थ में यही लिखा है।

(३८६) पांव में कांटा लग जाता है तो दूसरे कांटे से उस कांटे को निकालकर अन्तमें दोनों कांटे फेंक दिये जाते हैं, तेसेही अविद्या नाश के लिये विद्या रूप माया की आवश्यकता होती है, अन्तमें पूरा ज्ञान होने पर विद्या और अविद्या दोनो दूर हो जाती हैं।

—:o:—

मायाकी मोहिनी शक्ति।

(३८७) माया का भेद बिदित होने पर वह आप कैसे भाग जातीहै जैसे चोर घरमें आवे और गृहस्थ जान जाय कि चोर आयाहै तो चोर स्वयं भाग जाता है।

(३८८) जिसे भूत लगता है, वह यदि आप जान जाय कि मुझे भूत लगा है तो भूत भाग जाता है, ऐसाही यदि मायामें फँसा हुआ मनुष्य जानले, कि माया मुझे पकड़े है तो माया भाग जाती है।

(३८९) मायासे बचने के निमित्त हम क्या उपाय करें? मायासे बचने के लिय जो उपाय है, उसे भगवान आपही बता देते हैं, पर सच्चेभावसे मुमुक्षु होना चाहिये ॥

(३९०) परमहंसदेव कहा करते थे कि—केवल एकाध बात में समझना चाहो तो मेरे पास आओ और लाखों बातें सुनके समझना चाहते हो तो केशव चन्द्रसेन के पास जाओ। किसी मनुष्यने एक समय उनसे कहा कि मुझे एकबात में ज्ञान दीजिये। स्वामी ने कहा "ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या"

(३९१) हरिदास बाघका चेहरा लगा कर एक बालक को डरपा रहे थे, बालक डर कर रोने लगा, मा ने आके लड़के को चुपहोने के लिये कहा कि उससे क्या डरते हो वह तो हमारे हरिदास हैं; उन्होंने मुखरप कागज का बना बाघका चेहरा लगाया है, पर तब भी लड़का चुप न हुआ । अन्तमें जब हरिदास चेहरा उतारके आगे खड़े होगये और वह चेहरा लड़के को दे कर चुप किया, तब उस लड़के ने भेद जाना वह फिर चेहरे से नहीं डरा, इसी प्रकार जो मायामें फंसे हैं वे जब मायाका मर्म भेद पावेंगे तब उससे न डरेंगे ।

(३९२) सांपके शरीरमें बिष रहता है पर उससे उसकी कुछ हानि नहीं होती जब दूसरे को वह काटता है तो विष व्यापता है। वैसेही माया भगवान में रहके भी उनको नहीं लगती परन्तु दूसरेको मुग्ध (विकल) करती है ।

(३९३) एक दिन एकाएक मेघ घिरि आया परन्तु वायुसे तुरन्त फिर उड़ गया। यह देखके एक परमहंस नङ्गा होके बड़े सुखसे नाचने लगा। और कहा कि माया भी इसी

प्रकार आती है और चली जाती है। पहिले वह नहीं थी, बीच में आ गई और अन्त में पुनः जाती रहैगी।

(३९४) बिल्ली अपने बच्चे को दातोंसे ऐसा पकड़ी है कि बच्चेके तनमें तनिकभी दांत नहीं चुभते परन्तु जब वह मूसेको पकड़ती है तो मूसा मर जाता है। वैसेही माया भगवद्भक्तको छोड़ दूसरे को नाश करती है।

(३९५) एकबार परमहंसजी ऐसे भावाविष्ट हुये और कहने लगे "मुझे फूल माला नहीं चाहिये उसका आधार सूत चाहिये"। तात्पर्य यह है कि मुझे भक्त नहीं चाहिये वरन परमेश्वर चाहिये।

(३९६) मछली कीचमें रहती है परन्तु उससे मैली नहीं होती ऐसेही मुक्त पुरुष संसारमें बसके भी उसके कलङ्कमें दूषित नहीं होते हैं।

(३९७) सांप जैसे अपनीकेंचुलीसे अलग है, वैसेही शरीरसे आत्माभी भिन्न है।

(३९८) कोई साधु काचके झाड़की एक फली रात दिन हाथमें लिये उसे बार २ देखकर हँसा करता था, हँसने का कारण यह था कि वह जानता था जैसे इस झाड़की फलीमें अनेक रंग दिखाई देते हैं परन्तु सब झूठे हैं, तैसेही यह जगत यद्यपि व्यवहार में सच्चा जान पड़ता है पर वास्तव में सब मिथ्या है।

—:०:—

शरीर अनित्य है।

(३९९) परमहंसजीको रुग्नावस्थामें किसीने उनसे कहा

कि जब आपको समाधि लगती है तब आप मातासे कहकर उनसे रोग क्यों नहीं अच्छा करा लेते ? यह सुनके परमहंसजी बोले—छी २ ! इस लोहू और पीबसे भरे शरीरके निमित्त मातासे कहना पड़े । छी २ ।

(४००) पिंजड़े से पछी के उड़ जाने पर पिंजड़े का विशेष आदर कोई नहीं करता । वैसेही शरीर रूपी पिंजड़ेसे जीव रूपी पक्षीके निकल जाने पर फिर मृतक शरीर का कोई विशेष आदर नहीं करता ।

(४०१) कभी रोग शोकके विषयमें चर्चा होती थी तब परमहंसजी कहा करते थे—जैसे सराय के घरमें रहने से उसका किराया देना पड़ता है, वैसेही शरीर रूपी गृहमें रहने से उसका भाड़ा चुकाना पड़ता है । रोग शोक को घरका किराया समझना चाहिये ।

(४०२) यदि यह शरीर तुच्छ और अनित्य है तो साधु भक्त इस शरीर के लिये इतना यत्न क्यों करते हैं ? खाली सन्दूक की रक्षा कोई नहीं करता, पर हां जिस सन्दूक में मुहर, रुपये और बहुमूल्य वस्तु भरा होता है उसकी रक्षा सब करते हैं, साधु भक्त लोग उस शरीर की इसलिये रक्षा करते हैं कि इसमें ईश्वर अपनी लीला दिखाता है और इसी में प्रकट होता है ।

(४०३) इस शरीर में ईश्वर किस भावसे बास करता है ? जैसे पिचकारी की दण्डी (मूसरी) पिचकारीमें रहके उससे अलग रहती है, तैसेही ईश्वर शरीर में रहकर भी अलग रहता है ।

(४०४) जबतक अग्निकी ज्वाला जलती रहती है तब तक उसपर धेरे दूध में उफान आता है पर ज्वाला हटा लेने से वह फेर ज्योंका त्यों शान्त हो जाता है। यही साधनाव-स्थाकी भी व्यवस्था है कि उत्तेजनके बढ़ानेसे बढ़ती है और घटाने से घटती है।

——:o:——

खान पान।

(४०५) जो हविष्य (यज्ञका शेष अन्न) भोजी है पर ईश्वरको नहीं चाहता है वह मानो गोमांस भक्षी है और गोमांस भक्षी भी यदि ईश्वरको चाहता है तो वह मानो हविष्यान्न खाता है।

(४०६) जिस आहारसे मन चञ्चल नहीं होता वही आहार विधि है।

(४०७) जिसकी जिस आहारमें रुची है उसी को वह कर सकता है।

(४०८) जिसका मन ईश्वर की ओर लगा होता है, उसकी रुचि आहार की और कभी नहीं होती।

(४०९) जिसको पियास लगी है वह क्या गङ्गाजल को मैला बोल नया पोखरा खोदकर पानी पीने जायगा? जिसको धर्म्म की पियास नहीं लगी है वही हिन्दूधर्म्म को अग्राह्य करके नया धर्म्म काल्पित कर उसे पालन करना चाहता है। पियास होने से उतना ढकोंसला नहीं चलता।

धन सम्पत्ति ।

—:o:—

(४१०) पैसे कौड़ी से दाल भात बनते हैं; पर उससे ऐसा मत समझो कि पैसा कौड़ी शरीर का चाम लोहू है अथवा राज्य है ।

(४११) धनसे अहङ्कार करने की कोई बात नहीं है । यदि कोई धनी कहै कि मैं धनी हूँ इस कारण अहङ्कार करता हूँ तो उसे सोचना चाहिये कि मुझसे भी बढ़के बहुतेरे धनी हैं जिसके सामने मैं भिखारी हूँ । सन्ध्याके उपरान्त अन्धकार फैलने पर जब जुगनू चमकता है तब वह समझता है कि मैं सारे संसारका प्रकाशक हूँ परन्तु जब वह तारोंको चमकते देखता है तब उसका अहङ्कार जाता रहता है तब सितारे समझने लगते हैं कि हमारी ही ज्योतिसे जगत प्रकाशमान है किन्तु थोड़ी देर पीछे जब चन्द्रमा उदय होता है सितारोंका भी अभिमान नष्ट हो जाता है । और उन्हें भी नीचा देखना पड़ता है । वैसेही चन्द्रमा सोचता है कि मेरीही चांदनीसे जगत में उजियाला फैला हुआ है । इतनाही नहीं वरन् ऐसा समझता है कि संसारको मैं हंसती हुई सुन्दर ज्योति छटासे न्हवा रहा हूँ परन्तु अन्तमें देखो सवेरा होने पर सूर्यके प्रकाशसे जगत् प्रकाशित हो जाता है । फिर चन्द्रमा कहां रहा ? वैसेही जो अपनेको धनी समझके अहङ्कार करते हैं यदि वे इन भौतिक पदार्थोंके विषयमें विचार करैं तो उनका अहङ्कार चूर्ण हो जायगा, फिर कभी धनका वे अहङ्कार न करेंगे ।

(४१२) पुलके नीचे जल बे रोकटोक आता जाता है ।

रुकता नहीं है; योंही मुक्त हुये उदार पुरुषके हाथमें पैसा आतेही व्यय हो जाता है।

——:o:——

निन्दा और स्तुति।

(४१३) जो दूसरेकी अनधिकार चर्चा करता है वह आत्मा और परमात्मा दोनोंके विषयका बिचार भूल जाता है।

(४१४) लोग जो हमारी स्तुति वा निन्दा करें तो हमे दोनोंकी टाय २ को कौवेकी कांउं २ समझना चाहिये। किसी मनुष्यका भला कहते जितना समय लगती है उतनोही समय निकम्मा कहते लगती है। इस कारण किसोकी स्तुति वा निन्दा पर कान न देना चाहिये।

——:o:——

क्षमा और सहिष्णुता

(४१५) वर्णमालामें प्रत्येक अक्षर पृथक २ है परन्तु 'ह' कारसे पूर्व श, ष, स ये तीन अक्षर हैं। उनसे शिक्षा मिलती है कि जितना सहते बने "सहो"

(४१६) क्षमाही तपास्वियोंकी पहचान है।

(४१७) सज्जनका रोष और पानीका धब्बा नहीं रहता।

अहंकार।

(४१८) मुक्ति होगी कब? अहङ्कार दूर हो जब। जब दूर हो अहङ्कार। तब होवे निस्तार।

(४१९) सूर्य साक्षात् ताप पहुंचाकर सारे जगतको जीवित रखता है, बादलोंसे ढक कर वह वैसा नहीं रख सकता है; इसी प्रकार मनुष्यके मनके भीतर "मैं" अहंतत्व रहनेसे ईश्वर तटस्थ रहता है।

(४२०) राम, सीता, और लक्ष्मण जब बनको पधारे, तब आगे २ राम, बीचमे सीता और पीछे २ लक्ष्मण चलते थे, लक्ष्मण रामके दर्शनके लिये उत्कंठित होते थे, सो उनकी बिनतीसे सीता तनिक हटके चलने लगती थीं उतनेमें लक्ष्मणको रामका दर्शन हो जाता था, ऐसेही ब्रह्म और जीवकी स्थिति है मायाके हटतेही जीवको ब्रह्मका दर्शन हो जाता है।

मोहान्ध का यही सिद्धान्त है "कि हमही काम करते हैं"।

(४२१) भगवान शङ्कराचार्यका एक शिष्य था। उसने बहुत दिन तक उनकी सेवा की तौभी उन्होंने उसको कभी उपदेश नहीं किया। एक दिन भगवान शङ्कराचार्य अपने आसन पर बैठे थे कि उन्होंने किसी आदमीके आनेका आहट सुना और बोले कि "कौन है" शिष्यने कहा—"हम"। आचार्य बोले "हम" शब्द जो मनमें बहुत अच्छा लगता है इसका अर्थ बिचारो तौ सभी जगत् हम है। अन्यथा यदि ऐसा अर्थ ग्रहण न करो तौ हम् शब्दके व्यवहारको छोड़ दो।

अहम् ईश्वरका दास है।

(४२२) मुक्ति तभी होगी जब अहङ्कार दूर होजायगा।

सत्य है परन्तु उसके पूर्व यदि अहन्ता (अहङ्कार) बनी रहै और मैं भी भगवानका दास बना रहूं तो अहन्ता से क्या हानि है।

(४२३) अहङ्कार दो प्रकार का होता है। एक कच्चा और दूसरा पक्का। मैं अमुकका पुत्र हु, वह मेरा घर है, मेरा नाम यह है इत्यादि विषयका अहङ्कार कच्चा है। और भगवान्‌के संबन्धमें जो अहम् भाव होता है, वह अहङ्कार पक्का है अर्थात् मैं परमेश्वरका पुत्र हूँ, न केवल यह देह किन्तु सभी पदार्थ ईश्वर के हैं ऐसा अहङ्कार पक्का है।

———:o:———

क्या अहंकार सम्पूर्ण नाश हो सकता है।

(४२४) क्या अहंकारका सर्वथा नाश नहीं होगा? कमलका पत्ता टूटकर गिर पड़ता है पर दण्डीमें उसका चिन्ह रह जाता है। ऐसेही अहङ्कारके नाश होने पर उसका संस्कार रह जाता है पर वह कुछ हानि नहीं करता।

(४२५) एक मनुष्यने किसीसे कहा—स्वभाव अमिट है। दूसरा बोला आगमें कोयलेकी स्याही (कालापन) जाती रहती है। परमहंसजीका कहना है कि जलते हुए अँगारेमें कालापन नहीं रहता किन्तु भस्म हो जाता है।

(४२६) लहसन जिस पात्रमें पीसकर रक्खा जाता है। उसे चाहै जैसे मांजो पर दुर्गन्ध न जायगी। अहङ्कार भी इसी प्रकारकी बुरी वृत्ति है, उसके दूर करनेका कितनाही उपाय करो पर वह मिट नहीं सकता।

(४२७) नारियल वा खजूरके पेड़ का पत्ता गिर जाता है, परन्तु उसका दाग (निशान) बना रहता ऐसेही शरीरके रहते अहंभाव निःशेष नहीं होता, परन्तु जीवन्मुक्त पुरुष को फिर संसारी फन्देमें नहीं फांसता।

—:o:—

सब ईश्वरही का है।

(४२८) जिस प्रकार गृहस्थोंके घरकी दासियां, संसारके सम्पूर्ण कार्य किया करती हैं, सन्तानोंका लालन पालन करती हैं, उनके मर जाने पर रोती पीटती भी हैं किन्तु खूब जानती हैं कि वे उनके कुछ भी नहीं हैं।

(४२९) भगवान को दो बातों पर हंसी आती है; एक तो जब भाई २ आपस में धरती बांट कर कहते हैं इतनी हमारी भूमि है और उतनी तुह्मारी है। दूसरे जब रोगीकी मरण दशामें भी वैद्य कहता है हम इसे बचावेंगे।

—:o:—

जातिभेद।

(४३०) वाहिरी चिन्ह जनेऊ इत्यादि पहिनना भला है कि नहीं? आत्मज्ञान होने पर जब मुख्य बन्धन मिट जाता है उस समय आप ही आप और सब बन्धन छूट जाते हैं तब ब्राह्मण शूद्रमें कुछ भेद नहीं रहता। जनेऊ आप गिर जाता है, परन्तु जब तक जीवमें भेदबुद्धि रहै तब तक जनेऊ आदि चिन्होंको न त्यागना चाहिये।

(४३१) पेड़से गिरा पक्का फल मीठा लगता है पर कच्चा फल यदि खाया जाय तो न मीठा लगता और न खायाही जाता है। ज्ञान उदय होने पर ज्ञानीकी बुद्धिमें जाती भेद नहीं रहता पर अज्ञानीके लिये जाति भेद मानना असन्त आवश्यक है।

(४३२) एक समय एक विद्यार्थी ने परमहंसजीसे पूछा कि महाराज हरि तो पुरुष मात्रके हृदयमें वास करते हैं तो फिर किसीके हाथका अन्न खानेमें क्या दोष है? परमहंसजी ने उससे पूछा तुम ब्राह्मण हो? उस विद्यार्थीने कहा हां? हूँ। परमहंसजीने कहा फिर भी हमसे प्रश्न करते हो। अच्छा; तुम एक दियासलाई जालाओ और तुरन्त उसके ऊपर सूखी लकड़ियोंका ढेर कर दो तो बताओ क्या घटना होगी? उस विद्यार्थीने कहा—दियासलाईकी आग तुरन्त उस लकड़ियोंके ढेरसे दब कर बुझ जायगी। परमहंसजीने फिर पूछा तुम बड़े प्रज्वलित दावानलमें केलेका पेड़ काट कर झोंक दो तो क्या परिणाम होगा उसने उत्तर दिया वह तुरन्त जल कर राख हो जायगा। परमहंसजीने कहा—देखो इसी प्रकारसे यदि तुम्हारी ज्ञानाग्नि मन्द है तो पात्रापात्रका विचार बिना किए खान पान करनेसे संभव है कि वह ज्ञानाग्नि बुझ जावे। परन्तु यदि तुम्हारी ज्ञानाग्नि प्रबल हो तो जाति पाँतिका विचार बिना किये भी खान पान किया जावे तो वह तुम्हारी ज्ञानाग्निमें भस्म हो जायगा।

(४३३) फोड़ा अच्छा होने पर समय पाके आपही उसकी पपड़ी (खुँट) छूटके गिर जाता है परन्तु कच्चा खुँट तोड़ देनेसे उसमेंसे लोहू निकलने लगता है, वैसेही ज्ञानके

उदय होनेसे जाति भेद बुद्धिमें अपने आप नहीं रहता परन्तु आज्ञानी मनुष्योंको जाति भेद मानना ही चाहिये ।

(४३४) आंधी चलनेमें नहीं दृष्टि पड़ता कि कौन बड़ है, कौन पीपल है । ऐसेही ज्ञानोदय होने पर ज्ञानीकी मति में जाति भेद नहीं रहता । पहाड़ पर चढ़नेसे उसके नीचेके बड़े २ सालके पेड़ कैसे छोटे देख पड़ते हैं परन्तु नीचेसे साल कितना ऊँचा जान पड़ता है पर पहाड़ पर चढ़नेसे साल के पेड़ और तृण समान दिखाई देते हैं । योंही संसारी दृष्टिसे माता पिता आदि गुरुजन कितने महान जान पड़ते हैं परन्तु ईश्वरमें चित्त लगानेसे सब तुल्य जान पड़ते हैं । अतः केवल महान् भगवानकीही सेवा कर्तव्य है ।

(४३५) ऊँचे पर चढ़के देखनेसे सब एक समान दिखाई देते हैं । इसी प्रकार ईश्वरकी प्राप्ति होने पर गुण दोषकी दृष्टि नहीं रहती ।

——:o:——

भेदमें भी एकता ।

(४३६) एककी संख्याके आगे लगातार शून्य देते चले जानेसे संख्या बढती जाती है परन्तु एकके अंकको मिटा देनेसे जैसा फिर कुछ भी शेष नहीं रहता, उसी प्रकार ईश्वरात्मक एकको छोड़ देनेसे जीवका सर्वस्व मिथ्याहो जाता है ।

(४३७) हमको गृहस्थोंके महलोंमें जाके स्त्रियोंके देखने से बोध होता है कि हमारी सच्चिदानन्दमयी माता नाना प्रकारके पट भूषण धारण किये घूंघट मार कर सतीकी साज सज

करके विराजमान है और जब हम कलकत्तेके मछुआबजारमें जाकर देखते हैं कि ऊपरके बरामदोंमें हुक्का हाथमें लिये, शिर उघारे गहने पहिने स्त्रियां खड़ी हैं तब बोध होता है हमारी सच्चिदानन्दमयी माता वेश्या रूप धारण करके कोई न्याराही खेल खेल रही हैं।

(४३८) मनुष्य तकियाके ग़िलाफ़के समान है, जैसे ग़िलाफ़ पर भांति २ के काले और लाल रंग होते हैं परन्तु उसके भीतर रूई एकसी ही है। इसी प्रकार कोई काला कोई गोरा, कोई साधु और कोई असाधु है पर सबके भीतर एक परमेश्वर विराजमान है।

(४३९) परमहंसजी कहते थे सब वस्तु परमेश्वरही है। मनुष्य परमेश्वर है, हाथी परमेश्वर है घोड़ा परमेश्वर है लम्पट परमेश्वर है और साधू भी परमेश्वर है।

(४४०) हम बनि पन्नग दंशन करहीं,
बनि खगेश हमही विष हरहीं।
हाकिम बनि हम हुकुम चलावैं,
बनि सिपाहि हम जङ्ग मचावैं॥

(४४१) जब चोर चोरी करने लगता है तो ईश्वर गृहस्थ को जगाता है, इसका तात्पर्य यह है कि ईश्वर की अनुमति बिना कुछ नहीं होता।

——:o:——

मनुष्यकी दुर्बलता कैसे दूर हो।

(४४२) जीवका अहंकार दूरि हुए बिना शिव नहीं मिलता और शिवके शव बिना भये आनन्दमयी माता उनके ऊपर नहीं नाचतीँ।

(४४३) जिसकी जिसमें आसक्ती की वासना है उसमें उसका बिचार करना कर्तव्य है और जिस बस्तुके लिये समय २ पर अभिलाषा होती है उसका उसे भोग करना कर्तव्य है, क्योंकि भोग वासना का क्षय न होने से किसीको तत्वबोध नहीं हो सकता

(४४४) स्त्रीमात्रही भगवती का अंश है।

भक्तोमें परस्पर मित्रता।

(४४५) भक्तको अकेला रहना क्यों नहीं भाता? गांजा पीने वालों को जैसे अकेले गांजा पीना अछा नहीं लगता तैसे ही अकेले माताका नाम पुकारना भक्त को अच्छा नहीं लगता।

(४४६) पत्नी रात्रि में जो बात चीत पति से करती है दूसरे किसीसे नहीं कहती और न कहने की उसे इच्छा ही होती है, और यदि वह बात कहीं खुल जाती है तो लजाती है पर अपनी सहेलियों को सब कह सुनाती है और प्रसन्न होती है, यदि वह बात अपनी सखियों से न कहै तो उसका पेट फूलता है अर्थात् गुप्त नहीं रख सक्ती। ईश्वर के भक्त भी उसी प्रकार ईश्वर से बातेँ करते हैं, उन बातों से उन्हें जो उद्धार होता है उसे वे ऐसे वैसों से नहीं कहते यदि कहेँ भी तो उससे उन्हें प्रसन्नता नहीं होती, किन्तु भाव का सार निकल गया सा जान पड़ता है, पर हां भक्त के प्रति कहने में मन खोल के वे बातें करते हैं और सुखी होते हैं यदि भक्त से बातें न करैं तो व्याकुल होते हैं।

(४४७) यदि ढोरों के बीच कोई अन्य जाति का पशु घुसे तो सब ढोर मिलके उसे भगा देते हैं पर यदि कोई ढोर घुसे तो सब उसे जीभ से चाटके आपसा बना लेते हैं योंहीं दो भक्त जो परस्पर मिलते हैं तो बड़े प्रसन्न होते हैं और अलग होना नहीं चाहते पर यदि कोई अभक्त आताहै तो उससे वे नहीं मिलते।

---:o:---

भक्त जनों का प्रेम कभी घटता नहीं है।

(४४८) क्या कारण है कि भक्त जनका भक्तिभाव कभी चुकता नहीं है। व्यापारी के तराजू में जब धान वा चावल तौला जाता है उस समय उसकी गृहिणी टोकरी भर २ कर आगे धरती जाती है; उसी प्रकार से भगवान अपने भक्त का भक्तिभाव चुकने नहीं देते। इसी लिये भक्तका भाव खतम (स्थगित) नहीं होता। हां कोरी पोथी पढ़ ज्ञानी का ज्ञान दो दिन में लुप्त हो जाता है।

(४४९) प्रेम तीन प्रकार का होता है उत्कण्ठ, प्रकृष्ट, और निकृष्ट अर्थात उत्तम, मध्यम और अधम। उत्तम प्रेम वह है जिससे प्रेमी जन आप क्लेश सहके और का भला चाहते हैं, मध्यम वह है जिससे मनुष्य अपनी और दूसरे की भी भलाई चाहता है, पर अधम प्रेम अपस्वार्थी का अपने आत्मा पर है जिससे वह आप क्लेश उठाना नहीं चाहता, चाहे और को क्लेश हो।

(४५०) चकमक पत्थर यदि सौ बर्ष जलमेँ रहै तौ भी उसके भीतर की अग्नि बनी रहती है शान्त नहीं होती, अतएव जब उसे जलसे निकालकर लोहे पर ठोकते हैं तभी उसमें से आग की चिनगारी निकलती है, ऐसेही पूर्ण भक्त सहस्रों संसारी वस्तुओं से घिरा रहने पर भी विश्वासहीन नहीं होता भगवान की कथा सुनते ही वह उन्मत्तसा हो जाता है ।

———:o:———

हरि नाम और हरि भक्ति ।

(४५१) भगवान की कथा वार्ता सुननेसे जिसके तनमें रोमावली होती है और प्रेम जल नयनों से बहता है, उसका वही अन्तिम जन्म जानो ।

(४५२) हरि शब्द का अर्थ मनोहर है अर्थात् जो मन को हरै वह हरि है ।

"हरिबोल" शब्द नहीं किन्तु "हरिबल" है अर्थात् भगवान ही का बल है ।

(४५३) जिस घर में भगवान का भजन गाया जाता है उस घर में कलियुग का प्रवेश नहीं होता ।

———:o:———

पूजा और प्रायश्चित्त ।

(४५४) निहंग तोतापुरी गुरु का वाक्य है—लोटे पर नित्य के न माजने से काई लग जाती है । उसका तात्पर्य

यह है कि प्रतिदिन ध्यान न करने से चित्त अपवित्र हो जाता है। परमहंसजी उसके उत्तर में बोले—सोने के लोटे पर तो काई नहीं लगती अर्थात् भगवत्प्राप्ति होने पर अधिक साधन करने की अनावश्यकता है।

(४५५) परमंहसजी साधनावस्था में कालीमाई से प्रार्थना करते थे कि हे माई हमको शुद्धभक्ति और अटल विश्वास दे।

(४५६) दिन तो बीत गया पर कुछ करते न बना।

———:o:———

श्रद्धा और भक्ति।

(४५७) जिसको विश्वास है उसको सबकुछ है। जिसे विश्वास नहीं उसे कुछ भी नहीं है।

(४५८) जैसा भाव होता है वैसाही फल मिलता है। फल की उत्पत्तिका हेतु विश्वास है

(४५९) किसी मनुष्य ने एक दिवस स्वामी से कहा कि महाशय! हमे कुछ कर दीजिये, यह सुनकर स्वामी बोले "नहीं बेटा। मैं तुझको कुछभी नहीं कर सकूंगा, तेरी हड्डी २ में काम और कञ्चन घुस रहे हैं। एकाएक कुछ नहीं होसकता उसके अनन्तर बहुत प्रार्थना करनेसे उन्होंने कहा "यहां आया जाया करो। इसीसे जो कुछ होना होगा हो जायगा और कुछ न करना पड़ेगा।

(४६०) पत्थर चाहे सहस्रों वर्ष पानीमें पड़ा रहे पर

उसमें जल नहीं भिदता । पर मिट्टी जलको छूतेही गल जाती है । ऐसेही हृदयमें दृढ़ विश्वास रहनेसे सहस्रों परीक्षामें भी वह नहीं हटता । इसके विपरीत जिनके मनमें विश्वास नहीं है वह थोड़े ही समयमें हट जाता है ।

(४६१) रेलगाड़ी विनाश्रमके भारी २ बोझा ढो ले जाती है, योंही विश्वासी भक्तभी भक्ति विश्वास पूर्वक इस संसारका भार माथे पर धरे हुए सहजहीमें सुखसे चले जाते हैं ।

(४६२) सोतेका पानी बेगसे बहता हुआ ठौर २ पर भवँरमें पड़ता है परन्तु आगे फिर ठहर सीधा चला जाता है, ऐसेही अन्तर्यामी ईश्वर धार्मिकोंके मनमें भी कभी २ विश्वास की घटती निराश और खेद उत्पन्न कर देता है पर वह वृत्ति अधिक काल नहीं ठहरने पाती शीघ्रही निवृत्ति हो जाती है ।

(४६३) लुहार कि निहाई पर हथौड़े की कितनी चोटें पड़ती हैं परन्तु वह वैसीही बनी रहती है मनुष्यमें भी उसी प्रकार सहिष्णुता (सहन शक्ति) होना चाहिये ।

नम्रता ।

(४६४) एक सांप गुरूसे उपदेश पाके ईश्वरकी भक्तिमें लगा । और काटना छोड़ दिया । परन्तु महल्लेके लड़के उस (सर्प) को मारने लगे सर्प भक्त था इसी कारण मार सहता था पर किसीको काटता न था, यहां तक कि चोटोंसे उसका शरीर घायल हो गया, पर तौ भी उसने किसीको न

डसा। एक दिन दैवात् गुरूने आके उसकी वह दशा देखी और उससे कहा—काटना छोड़ दिया; यह अच्छी बात है पर अबसे कोई मारने आवे तो उसे काटो मत पर फुक्कार तौ मारा करो, फुक्कार मत त्यागो।

(४६५) फलोंसे लदा पेड़ झुक जाता है, यदि ऊँचा होने की इच्छा है तो झुको।

——:O:——

अभिमान।

(४६६) अभिमान राखके ढेरके समान है उस पर पानी पड़नेसे बह जाता है, इसी प्रकार अभिमान। जब ध्यान अथवा और किसी प्रकारकी भक्ति करनेसे उसका फल नहीं मिलता। ज्ञान रूपी कुहारीसे अभिमान रूपी राखको खोदके पीछे जो भक्ति की जाती है तो शीघ्र आत्माका दर्शन होता है।

(४६७) हमारी चिन्तामणिके नृसद्वार पर न जाने कितनी मणियां पड़ी हैं।

(४६८) धर्म्मकी विशेष बातें सुनी पर उनका कुछ फल न मिला। इसका क्या कारण है? जैसे नालेका जल एक ओरसे आता है और दूसरी से चला जाता है। योंही तुमने एक कानसे धर्मवार्त्ता सुनी और दूसरीसे निकाल दी।

(४६९) कोई मनुष्य दम्भ करके बोला कि मैं १४ बर्षसे धर्ममें लगा हूं जिसने जो कर्त्तव्य बतलाया वही किया। न जाने कितने तीर्थ घूम आया और साधू महात्माओंका सङ्ग

किया पर प्रत्यक्ष कुछ फल नहीं मिला । यह सुनके परमहंसजी बोले 'माताका शपथ कर कहता हूं, जो उसे दिलसे चाहता है, पाता है ।

(४७०) किसी नये साधकने एक मनुष्यके विषयमें अपने मनमें कुछ विचारा । दैवात् उसके विचार अनुसार उस मनुष्यको वही घटना हुई । साधकने समझा कि मुझे सिद्धि प्राप्त हो गई । सो वह आनन्दित मन तुरन्त दौड़कर परमहंसजीके समीप पहुँचा और बोला कि "मुझे सिद्धि प्राप्त हुई" परमहंसदेव उसकी बात सुनकर बोले छी २ उस ओर चित्त मत ले जा ।

(४७१) एक धनी माड़वारी आकर परमहंसजीसे बोला कि हम सब कुछ त्याग वैठे हैं । अबभी भगवान्की प्राप्त क्यों नहीं होती ? उसकी बातको सुनकर परमहंसदेव बोले जैसे तेल के कुप्पेसे तेल निकाल लेने परभी कुप्पेमें थोड़ा तेल और गन्ध रह जाता है वैसेही तुह्मारे अन्तःकरणमें अभी तक बिषय वासना बनी है ।

ईश्वर की कृपा ।

(४७२) शक्तिमयी महामाया की कृपादृष्टि बिना कुछ नहीं सिद्ध होता ।—

(४७३) एक दिन परमहंसजीने कहा कि—मनुष्य इस कलिकाल में भी तीनि दिन में सिद्ध हो सकता है ॥

(४७४) ब्यार चलती रहती है तौ पङ्खा नहीं हाँकना पड़ता । ईश्वर की कृपा होने से फिर साधन की आवश्यकता नहीं रहती ।

(४७५) ईश्वर की कृपासे सभी कुछ हो सकता है ।

———:o;———

अध्यवसाय ।

(४७६) किसान एक बार जोतने बोने पर बारह वर्ष तक अकाल रहै तबभी खेतमें वीज बोने से न रुकैगा । योंहीँ विश्वासी मनुष्य जीवन भर भगवद्दर्शन 'न' पाके उसका भरोसा नहीँ छोड़ता ॥

(४७७) दो मनुष्य मुरदा जगाने गये, उनमें से एक तो पागल हो गया पर दूसरा रात्रि के पिछले पहर में माता का दर्शन पाकर बोला—माता ! वह क्यों पागल हो गया ? माता बोली—तुम भी पहिले कई जन्मों में इसी प्रकार पागल हुए अन्त में अब मेरा दर्शन पाया ।

———:o:———

बालकवत् हो जाओ ।

(४७८) बच्चों का स्वभाव कैसा होता है ? बच्चे रुपया देकर खिलौना ले लेते हैं; बिश्वासी भक्त को छोड़ और कोई संसार का धन वा मान त्याग कर ईश्वर को नहीं पाता ।

(४७९) जब तक मनुष्य बालक के समान न हो तब तक उसको परम ज्योति का दर्शन नहीं हो सकता। संसारी विद्या जो तुमने पढ़ी है भूल जाओ और बालकवत् मूर्ख बनो तब तुम्हें ज्ञान होगा।

(४८०) सांपके सन्मुख मेंडक नाचै,
सांप न पकड़े ताहि।
स्नान करै पर बाल न भीगै,
अमिय अम्बु निधि माहि॥

(४८१) पागल, मतवाले, लड़के लड़कियों के मुंह से कभी २ दैववाणी निकलती है।

—:o:—

सत्यपरायणता।

(४८२) सत्य बोलना सब प्रकार से विधेय है। सत्य बोलना न सीखने से कभी सत्य स्वरूप की प्राप्ति नहीं हो सक्ती।

—:o:—

ईश्वर की शरणागति।

(४८३) कोई बाप एक लड़के को गोद में लिये और दूसरे को हाथ से पकड़े मैदान में टहलने के लिये जाता था, चलते २ एक चील्ह दिखाई पड़ी, जो बालक बाप का हाथ थांमे हुए जाता था वह हाथ छोड़ ताली बजा के बोला—कि

पिता ! देखो यह कैसा पक्षी है, बाप का हाथ छोड़ते ही वह गिर गया और चोट खाई परन्तु जो गोद में था वह ताली बजाके मुदित हुआ और गिराभी नहीं क्योंकि बाप उसे थामे था, पहिला बालक तो पुरुषार्थका और दूसरा भक्तका उदाहरण है।

(४८४) आत्मसमर्पणसे अधिक सुगम और कोई साधन नहीं है ? आत्मसमर्पणका भावार्थ यह है कि "अपने मनमें आप किसी बलका अभिमान मत करो।

(४८५) परमहंसदेव ने एक समय कहा कि "संसारी मनुष्य जो कुछ करते हैं, वह सब ठीक है केवल एक ही भूल है"। यह सुन किसी मनुष्यने उनसे पूछा कि महाशय, "वह कौनसी भूल है।" परमहंसदेवजीने कहा "असार धन संपत्ति और मानके लिये यत्न न करके यदि भगवान्‌की प्राप्तिके लिये विद्या, बुद्धि, यत्न, परिश्रम, त्याग, कष्ट और सहिष्णुता का अभ्यास करै तो ठीक है।

(४८६) भगवान् पर भरोसा कैसा है ? जैसे बड़ा परिश्रम करनेके पीछे तकियासे लेट कर हुक्का पीना क्योंकि उस समय कोई और सोच बिचार मन में नहीं रहता; जो सोचता है सोई करता है।

(४८७) जैसे आंधीमें पलासके पत्ते अपने आप उड़े फिरते हैं उन्हें आप कोई यत्न नहीं करना पड़ता, तैसेही भगवान्‌के भरोसे जो रहता है, वह ईश्वरकी राहमें चलता है, उसे अपना कोई यत्न नहीं करना पड़ता।

साधक का बल ।

—:o:—

(४८८) साधकका क्या बल है ? लड़कोंके समान रोना ही बल है ।

(४८९) एक २ आंखमें दो २ कोर हैं एक नाककी ओर और दूसरी कान की ओर, उनमें से नाककी ओरकी कोरसे शोक के आंसू और कान की ओर की कोर से हर्षके आंसू टपका करते हैं; शोक और हर्षके आंसूओंमें यही भेद है ।

—:o:—

अविच्छिन्न तैल धारावत् भक्ति ।

(४९०) मनमें भजनभाव उदय तो होता है, पर ठहरता क्यों नहीं ? सत्य है बांसमें अग्नि बलकर बुझ जाती है, पर धीरे २ फूकनेसे जलती रहैगी । ऐसेही साधन मुख्य है ।

(४९१) भजन क्या करें भोजन की चिंता लगी रहती है इसका समाधान यही है कि जिसका काम करोगे वह भोजन देगा । जो भेजता है वह भोजनका सामान पहिलेही कर देता है; भोजनकी चिंता वृथा है ।

(४९२) दूसरेके मारनेके लिये ढाल तलवार चाहिये पर अपने मारने के लिये सुई बहुत है; औरों के सिखाने के लिये ढेरके ढेर शास्त्र पढने चाहिये पर अपना धर्म एक ही सिद्धान्त पर विश्वास लानेसे प्रगट हो जाता है ।

(४९३) एक समय एक सेवक अपने स्वामीसे उपदेशकी नाईं कुछ कह रहा था। उसे सुनकर स्वामीने कहा 'हां कहो क्या कहते हो, तुमसे भी कुछ सीख लें।

———:o:———

मनका एकीकरण।

(४९४) एक मनुष्य मछली पकड़ रहा था। कि एक अवधूतने उससे पूछा कि अमुक स्थानको जाने का कौनसा मार्ग है? और ठीक उसी समय मछली ने उसकी वंशी पकड़ी। इसीसे उसने कोई उत्तर नहीं दिया किन्तु मछलीमें ध्यान लगाये रहा। जब पहले मछली पकड़ली तब फिरिके उसने अवधूतसे पूछा कि—आप क्या चाहते हैं। अवधूत हाथ जोड़कर बोला—आप मेरे गुरू हैं; जिस समय मैं परमेश्वरका ध्यान धरूं उस समय आपके समान मेरा ध्यान दूसरी ओर न लगे, यही चाहता हूं।

(४९५) एक बगुला धीरे २ मछली पकड़ने चला जता था, उसके पीछे एक व्याध उसे बाणका लक्ष्य कर रहा था पर बगुला पीछे देखता ही न था, अवधूतने बगुलेसे हाथ जोड़के कहा—जब मैं ईश्वरका ध्यान धरूं तब मेरा मन पीछेकी ओर न जाय।

(४९६) एक चीलहके पीछे कई एक चीलहें और कौवे उड़ते जाते थे, उस चीलहके चुंगल (पंजा) में एक मछली थी, इस लिये और चीलहें और कौवे उसे नोचते खसोटते चले जाते थे कि वह मछलीको छोड़ दे, यहां तक कि उसने घबरा

कर मछली छोड़ दी । जो मछली छूट के गिरी कि दूसरी चील्ह ने पकड़ ली तब वे चील्ह और कौवे उस चील्हके पीछे लगे, पहिली चील्ह मछलीको छोड सुखसे एक वृक्ष पर जाके बैठी; एक अवधूत ने चील्हका एस अकंटक छुटकारा देख उसे धन्य २ कह कर कहा कि—मैं समझ गया संसार का भार उतार देनेसे शान्ति मिलती है, अन्यथा नहीं ।

(४९७) ध्यान करनेके पहले मनको ठिकानेके लिये थोड़ी देर ताली बजाकर हरि २ कहो । पेड़के नीचे ताली बजानेसे जैसे पक्षी उड़ जाते हैं तैसेही हरि २ कहने से मनके बुरे भाव भी दूर भाग जाते हैं।

(४९८) जैसे सूक्ष्म लक्ष्यके मारने से पहले स्थूल पदार्थ का निशाना लगाया जाता है तब सूक्ष्म लक्ष्य मारा जाता है इसी प्रकार साकार मूर्तिमें मन ठहर जाने से निराकार ब्रह्ममें विना प्रयास लग सकता है।

(४९९) जिस प्रकार जलको हिलानेसे उसमें सूर्य्य अथवा चन्द्रमाकी परिछांहीँ नहीं दीखती ठहरे हुए जलमें दीख पड़ती है उसी तरह मनके न ठहरनेसे भगवानका रूप नहीं दिखाई देता । निश्वास प्रश्वाससे मन चञ्चल होता है। अतएव जितना इनको घटाया जायगा उतनाही मन भी स्थिर होता चला जायगा ।

(५००) जैसे पहिले बड़े २ अक्षर लिखते २ छोटे अक्षर लिखना आता है, तैसेही साकार मूर्त्ति का ध्यान धरते २ निराकार का ध्यान होता है ।

(५०१) दीप की शिखा(लौ) में जो नीलिमाका अंश है उसे 'कारण' शरीर कहते हैं; साधक उसी में मनको लगाने

की चेष्टा करै। कारण में मन लय होने पर क्रमशः ऊंच गति को पावेगा। दीप शिखा में नीलिमाके चारो ओर जो जलती हुई प्रभाका अंश है उसे 'सूक्ष्म' शरीर कहते हैं और इसके परे जो आभा है उसे स्थूल शरीर कहते हैं।

(५०२) मन टिकाने के लिये साधकको पहिले एकान्त स्थान में अभ्यास करना चाहिये। दूध और पानी एक पात्र में रखने से दोनो एक हो जाते हैं, परन्तु दूधका मक्खन करने से उसको मक्खन निकाल दूधमें चाहे जितनी देर रक्खो, पानीके ऊपर ही तैरता रहैगा। ऐसेही निरन्तर अभ्यास से मनुष्य मनको ठहरा सकता है; तब वह जिस किसी स्थान पर रहता है वहीं उसका मन आस पासके और पदार्थों को छोड़ सदा ईश्वरमें ही मग्न रहता है।

—:o:—

ध्यान।

(५०३) ध्यान की पहली अवस्था में साधक को कभी२ एक प्रकारकी निद्रा आती है। उसीको योग निद्रा कहते हैं। उस समय साधकको कभी किसी प्रकारका और कभी किसी प्रकारका दिव्य दर्शन होता है।

(५०४) जो ध्यानसिद्ध है उसको मुक्ति मिलती है, यह कहावत है। ध्यान सिद्धकी क्या पहिचान है, वह ध्यान लगाते ही ईश्वरीय भावं में मग्न हो जाते हैं, और उनका आत्मा ईश्वरके साथ बातचीत करता है।

(५०५) शिर पर बगुला उड़े तब जानो ठीक ध्यान लगा।

तात्पर्य यह है कि ध्यानमें ऐसा मग्न हो कि यदि उस समय उसके शिर पर एक पक्षी भी बैठ जाय तो भी उसे विदित न हो तो समझो कि ध्यान ठीक लगा है ।

(५०६) "मनुष्य शब्द" मनहोश शब्द का मानो अपभ्रंश है क्योंकि जिसके मन में होश (चैतन्य) है वही मनुष कहा जा सकता है ।

——:o:——

समाधि ।

(५०७) समाधि दो प्रकार की है सविकल्प और निर्विकल्प ।

(५०८) किसी समय परमहंसदेवजी बोले कि मैं सच्चिदानन्द सागरकी मछली हूं ।

(५०९) समुद्रके पेटके भीतर बहुतसे पहाड़ और पहाड़ियां तथा उनकी घाटियां हैं जो धरातलवर्ती लोगोंको दिखलाई नहीं देती हैं । समाधि दशाकी अवस्थित का यही दृष्टान्त है कि समाधिस्थ जीव सच्चिदानन्द सागरमें निमग्न होता है, उस समय उसका मानुषिक चैतन्य अन्तर्लीन रहता है ।

(५१०) समाधि लगने पर मनकी कैसी स्थिती होती है ? जीती मछली जैसे तलावमें छोड़नेसे सुखी होती है तैसेही समाधिमें मनको सुख मिलता है ।

(५११) वह थोड़े मनुष्य हैं जिनको समाधि लगती है और जिनका अहंकार नाश हो जाता है । साधारणतः अहङ्कार

नाश नहीं होती। विवेकवैराग्य कितनाही करो यही अ-
हन्ता बार बार उदय होती है पीपल का पेड़ आज तुम काटो, कल देखोगे कि दूसरी स्थान से वह फिरि निकल आया।

(५१२) कठिन परिश्रम और चेष्टासे अपने दुष्ट प्रकृतिको परास्त करके आत्मज्ञान लाभ करनेके लिये निरन्तर अध्यवसाय और यत्न करनेसे जब किसीकी समाधि लग जाती है तब यह अहन्ता नाश होती है। परन्तु समाधि प्राप्त करना बड़ा कठिन है। अहन्ताका अभिनिवेश बड़ा भारी है। इसी लिये संसारमें आवागमन होता है।

—:o:—

साधकको कोई वस्त्र विशेष धारण करने की क्या आवश्यकता है।

(५१३) क्या साधकको किसी प्रकारका भेष रचना उचित है? हाँ उचित है। गेरुआ वस्त्रपहिन, मृदङ्ग करतालबजा के गानेके समय मुंहसे ख्याल टप्पा नहीं निकलता, हाँ काली किनारी की धोती पहिन और बालोंको काढ़ छैल चिकनियां बन छड़ी हाथमें लेनेसे ख्याल टप्पा गानेकी बड़ी चाह होती है।

(५१४) गेरुआ वस्त्र धारण करनेकी क्या आवश्यकता है! गेरुआ वस्त्र पहिनने से मनमे सद्भाव उत्पन्न होता है, पाँव में लतड़ी और देह में चिथड़े पहिनके पथ में निकलने से मनमें जैसे नम्रता और दीनता आती है तैसेही कोट पत-

लून और बूट जूता पहिनने से मनमें घमण्ड उमड़ता है, कमर में काली किनारी की धोती और गलेमें बेला चमेली के फूलों की माला पहिनने से निदूधूको * तान टप्पा गाना सूझता है ॥

(५१५) वकीलके देखने से जैसे मुकद्दमेंका भाव मनमें प्रगट होता है वैसेही भक्तके देखने से भगवद्भाव मनमें उदित होता है ।

—:o:—

सिद्ध पुरुष ॥

(५१६) मधु आपही निकलकर फूलों पर आजाता है और जब फूलकी सुगन्ध वायुसे उड़ती है मक्खी उसको सूंघ कर आ जाती है और चींटी उस स्थान पर आ जाती है जहां मिठाइ रक्खी हो । मधुमक्षिका और चींटीको बुलाने का कोई आवश्यकता नहीं है। ऐसे ही जब मनुष्य परम पवित्र और सिद्ध हो जाता है उसकी निर्मल और सुन्दर चरित्र अपने आप चारों ओर फैल जाता है, सत्य के ढूढ़ने वाले सिद्ध पुरुषों के पास आपही आ जायंगे, सत्यके प्रचारके लिये सिद्ध पुरुषों को इधर उधर जानेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

(५१७) मतवाला जैसे नशेकी झोंका (दशा) में कमरकी धोती कभी सिरमें बांधता है और कभी बगलमें दबा लेता है, सिद्ध पुरुषकी अवस्था प्रायः वैसी ही होती है ।

सर्प विषयुक्त होता है, उसे पकड़ो तो उसी समय वह

* प्रगट हो कि बंगाल में निद्धू बाबू एक महाशय थे जिन्हों ने तान टप्पा गाने के बहुत से गीत बनाये हैं ।

काट लेता है, परन्तु जो मनुष्य उसका मन्त्र जानता है वह पकड़ना तौ क्या बीसियों सांपो को गले में पहिरना एक खेल समझता है।

ऐसी भक्ति करो घट भीतर, छोड़ि कपट चतुराई।
सेवा बन्दन और अधिनता सहजै मिलु रघुराई॥
अंका तारे वंका तारे, तारे सदन कसाई।
सुआ पढ़ावत गनिका तारी तारी मीरा बाई॥
दौलत दुनियां माल खजाना, बनियां बैल चराई।
एक बातसे ठंडा पड़ गया खोज खबरि ना पाई॥

(५१८) हे माता! मैं यन्त्र हूं तौ तुम यन्त्री हो। मैं गृह हूं तुम गृहपति हो। मैं म्यान हूं तुम तलवार हो। मैं रथ हूं तुम रथी हो। मैं वही कर्म्म करता हूं जिसमें तुम प्रेरणा करती हो। मैं वही कहता हूं, जो तुम मुझसे कहलवाती हो। मैं वही आचरण करता हूं, जो तुम चाहती हो"। मैं नहीं २ केवल तुमहीं तुम हो।

—o—

दृष्टान्त समुच्चय।

(५१९) एक लकड़िहारा जङ्गलकी लकड़ी बेचकर बड़े दुखसे अपना निर्वाह करता था अकस्मात् कोई ब्राह्मण उस पन्थसे निकला, और उसके क्लेशको देखके बोला कि बच्चा! "आगे बढ़ो"। लकड़िहारा ब्राह्मण के वचनसे आगे बढ़ा और क्या देखता है कि एक चन्दन का बन है, उसीदिन जहां तक बना उसने चन्दनकी लकड़ी काटी और बाजार में बेची

और उसदिन उसने अधिक मूल्य पाया, दूसरे दिन वह अपने मनमें बिचारने लगा कि—ब्राह्मणने मुझे और दिन तो चन्दन काटने के लिये कहा ही नहीं; केवल यह कहा था कि, "आगे बढ़ो," आओ उसके कथानुसार आज और आगे बढ़ें यह कह कर वह आगे चला वहां उसे तांबे की खानि मिली, और जितना तांबा वह ला सका लाया और बेचकर बहुत धन पाया परन्तु लकड़िहारा पूर्व की बात भूल नहीं गया था, तीसरे दिन वह और आगे बढ़ा, और सोने की खानि पाई, निदान चौथे दिन हीरे की खानि पाकर वह बड़ा धनी हो गया, धर्म राज्यमें भी यही गति है, जो ज्ञान चाहो तो "आगे बढ़ो" साधनसे किसी सिद्धि को पाकर उसमें (जैसे अष्टसिद्धि इत्यादिमें) मत भूलो, आगे चले चलो तो अनमोल धन पाओगे।

(५२०) एक मनुष्य कूआ खोदने गया और दो हाथ मिट्टी खोदा कि इतने में एक दूसरा मनुष्य आया और बोला 'क्यों भाई! तुम क्यों व्यर्थ इतना परिश्रम करते हो? इसके नीचे जल नहीं है केवल बालू ही बालू है, उसकी बात मान कर कूआ खोदने वाला दूसरी जगह मिट्टी खोदने लगा, वहां पर एक तीसरा मनुष्य आया और कहने लगा कि भाई! यहां पहिले कूआ था वृथा क्यों श्रम करते हो, तनिक दाहिनी ओर खोदो तो उत्तम जल मिलेगा, उसने वैसा ही किया, इतने में चौथे मनुष्य ने आके उसे रोका, इसी प्रकार वह जहां २ खोदता था वहीं कोई न कोई आकर उसे रोक देता था, निदान वह कूआ नहीं खोद सका, इसी प्रकार धर्म मार्ग में अटल विश्वास न होनेसे बहुतों ने अपना सब कुछ खो दिया है क्योंकि आज जिसका विश्वास किया कल क्लेश में जब

उसकी परीक्षा हुई तब उसका वह विश्वास जाता रहा, यों होते २ अन्तमें या तो नास्तिकता आजाती है या दृढ़ निश्चय हो जाता है कि इस शरीर से धर्म साधन न हो सकेगा, इस बात को बिचार कर तुम्हें उचित है कि किसी की बात पर पूरा विश्वास करके उसी में लिप्त हो रहो।

(५२१) राम चन्द्रजी को पुल बांधके समुद्रके पार जाना पड़ा पर हनुमानजी राम नामके प्रभाव से बिना पुल पार गये। विश्वासका ऐसाही प्रभाव है।

(५२२) शिष्य गुरु २ कहता ही नदी पार हो गया। गुरु ने देखा 'वाह क्या बात है। मेरे नाम का इतना प्रताप है यह मुझे आगे नहीं बिदित था। दूसरे दिन गुरु "हम" २ कहते नदी पार होने चले और हम २ कहते इतने गहिरे पानी में चले गये कि संभल न सके और डूबकर मर गये।

(५२३) दो जने एक बाग में घूमने गये, उनमे से एक जो विषय भोग में चूर था घुसते ही अपने मन में बोला-यहां कितने आमके पेड़ हैं? उनमें कितने फल हैं? बाग का मूल्य क्या होगा?। परन्तु दूसरा बागके मालिक से कहके एक पेड़के आम झारके खाने लगा, बताओ दोनोंमें कौन समझदार है? आम खाने से तो पेट भरता है, पत्ते और फल गिनने से क्या लाभ है, जिन्हें ज्ञान का अभिमान है वे तर्क वितर्क में ही डूबे रहते हैं पर बुद्धिमान् ईश्वर से प्रेम करके संसार में जीते जी परम सुख भोगते हैं।

(५२४) सच्चिदानन्द रूप समुद्रके किनारे पर बैठके वा उस में डुबकी लगाके जल पीओगे? यदि संसारी सुख भोग की

इच्छा हो तो जलमें मत घुसो क्योंकि जो कोई उस समुद्रकी गहिराई का पता लगाने गया वह फिर संसारमें नहीं आया।

(५२५) आज कल के नये ढंग का कोई मनुष्य परमहंसजीके पास निर्लेप रहके भी चर्चा करने लगा। परमहंसजी उससे बोले कि निर्लेप संसारी कैसे होते हैं, जानते हो? एक भिखारी जब द्वार पर आता है तौ घरका स्वामी अपनी स्त्री को अपने धनकी अधिकारिणी बतलाकर आप निर्लेप संसारी जतलाता हुआ भिखारी से कहता है कि महाराज! हमतौ पैसा कौड़ी कभी नहीं छूते। हमसे मांग कर आप क्या लाभ उठावेंगे? यह सुन कर भी जब ब्राह्मण उसका पिण्ड नहीं छोड़ता परन्तु बिनती करता चला जाता है तब बाबूजीने मन में बिचारा कि यह एक रुपया बिना लिये न मानेगा। तब उसने भिखारी से कहा कि कल आईये देखा जायगा। "और घरमें जाके स्त्रीसे बोला कि एक दीन ब्राह्मण दुखी है। उसे एक रुपया देना चाहिये। रुपये का नाम सुनते ही स्त्री रुष्ट होके बोली "वाह! बड़े दानी बने हो। रुपया क्या मानो ईंट पत्थर लाके पाट दिया है" बाबूजी ए ए करके बोले कि 'दीन मनुष्य बड़ी बिनती करता है। एक रुपया लिये बिना न मानैगा। स्त्री बोली "नहीं २ मैं रुपया कभी न दूंगी।" बाबूजी के हट करने पर अन्तमें स्त्रीने कहा "लो एक दुहन्नी ले जाओ"। बाबूजी निर्लेप संसारी थे क्या करें जो स्त्रीने हाथ में दी ब्राह्मणको सो ही लाके देदी।

(५२६) रानी रासमणी की कालीबाड़ीमें एक समय एक बावला सा साधू आया। उसको वहां एक दिन भोजन नहीं मिला और न उसने किसीसे मांगा, हां एक कुत्ते को जूठा

पत्ता चाटते देख उससे लिपट साधुने कहा "कि तू आप खाता है, मुझको नहीं देता" यह कह कर कुत्ते के साथ आपभी खाने लगा, तदनन्तर कालीजी के सामने जाके उसने ऐसी स्तुती पढ़ी कि मन्दिर गूँज उठा, जब वहां से वह चला तो परमहंसजीने हृदय मुकरजी से कहा-कि उस साधुके पीछे २ जाओ, हृदय बाबू थोड़ी दूर उसके पीछे २ गये तब साधुने उनसे पूछा कि तुम मेरे पीछे क्यों आते हो, हृदयने कहा— कुछ उपदेश चाहता हूँ, साधूने कहा-जब कुंडी और गङ्गाके जलमें अभेद ज्ञान होना और सहनाई तथा दूसरे बाजोंमें भेद ज्ञान न रहेगा तब जानना कि पूरा ज्ञान हुआ, परमहंसदेवने कहा-मनुष्यों को एक प्रकार ज्ञानसे उन्माद भी प्रगट होताहै, सिद्ध मनुष्य जगत् में बाल, उन्मत्त और पिशाच की नाई संसार में घूमते हैं।

(५२७) एक समय मार्ग में चलते २ अनजाने एक साधुका पांव एक दुष्टके पयर पर पड़ा। उस दुष्टने तुरन्त रुष्ट होके साधुको बड़ी मार दी जिससे वह मूर्छित हो गया। साधुके शिष्योंने बहुत भांति सेवा करके उसको चैतन्य किया, कुछ चेत होने पर शिष्यों ने पूछा महाशय! देखिये आपकी सेवा कौन करता है? साधुने कहा-जिसने मुझे मारा था वही सेवा करता है।

(५२८) माया का भेद प्रगट होने पर माया तत्काल भाग जाती है। एक गुरू किसी गांवमें अपने शिष्य के घर जाते थे गुरूजीके साथ कोई नोकर चाकर न था उसने मार्ग में एक मोची को जाते देखा और उससे कहा, अरे! मेरे साथ रहेगा, यदि तू मेरे साथ रहै तो केवल अच्छा भोजन ही नहीं

वरन बड़ा आदर सत्कार पावेगा, चलना चाहे तो चल, मोचीने कहा— मैं महानीच जाति हूँ, आपका नौकर कैसे बन सकता हूँ ? गुरू ने कहा—तुम किसीसे बोलना मत और न अपनी जाति बतलाना तब तौ कोई चिन्ता न रहेगी । मोची ने यह सुन नौकरी स्वीकार करली, सन्ध्या समय गुरूजो शिष्य के घर में सन्ध्या वन्दन करते थे, उसी समय किसी दूसरे ब्राह्मणने आके गुरूजीके नौकर से कहा—जारे ! मेरा जूता तो वहां से उठा ला, वह नहीं गया, ब्राह्मण ने फिर कहा तबभी मोची नहीं गया किन्तु चुप बैठा रहा । जब ब्राह्मणने अनेक बार ऐसे कहा पर मोची ने एक भी न सुनी तब तौ ब्राह्मण झुंझलाके बोला क्यों बे ब्राह्मण काभी कहना तू नहीं मानता तू कौन जाती है ? यह सुन मोची कांपते २ गुरू की ओर देख के बोला—महाराज मेरी जाती तो पहिचान ली गई अब मैं न रहूँगा, मुझे जाने दीजिये । इतना कहके वह वहांसे रफूचक्कर हुआ, यही माया का भेद विदित होने का दृष्टान्त है ।

(५२९) एक दिन एक अवधूत सन्यासीने मठके ऊपर से देखा कि एक बारात बड़ी धूमधामसे ढोल ताशे बजाती जाती है । और बरात के पासही एक शिकारी एक मन होके किसी पक्षीकी ओर निशाना लगा रहा है, उसका ध्यान पक्षी पर ऐसा लगा हुआ था कि उसने बरात जाती न जानी, यह देख अवधूत ने शिकारी को प्रणाम कर कहा कि स्वामी आप मेरे गुरू हैं । जब मैं अपना मन ईश्वर के ध्यानमें लगाऊं तब वह आपके समान ध्यानमग्न हो ।

(५३०) एक ब्राह्मणने किसी राजा से जाकर कहा कि “महाराज ! मुझसे श्रीमद्भागवत सुनिये” राजाने कहा—आपने

श्रीमद्भागवत का अर्थ अभीतक आपही नहीं समझा है। जाके भली भांति पढ़िये तब आइये।" ब्राह्मण अप्रसन्न होकर चला गया और सोचा कि राजा कैसा अबूझ है। मैंने इतने दिन श्रीमद्भागवत पढ़ी, तौ भी वह कहता है "फिर जाकर पढ़िये"। राजा की बात का उत्तर देना अशक्य था, यह सोच घरमें आकर श्रीमद्भागवत का पाठ करने लगा और उसका अर्थ विचार कर हँसता और यह कहता जाता था कि राजा कैसा निर्ब्बोध है। श्रीमद्भागवत में मुझे क्या कुछ और भी समझना रहगया है? निदान वह फिर राजा के पास जाकर बोला "महाराज! अब मुझसे आप श्रीमद्भागवत सुनिये" राजाने फिर वही बात कही कि "आप भली भांति श्रीमद्भागवत पढ़ के आइये, तब हम सुनेंगे। ब्राह्मणने राजा की बात का उत्तर न दिया किन्तु मन में उदास होकर घर लौट आया और सोचने लगा कि "राजा मुझे क्यों बारंबार कहता है। अवश्यही इसमें कोई मर्म है" उसने फिर श्रीमद्भागवत का पाठ करना आरम्भ किया और ज्यों २ वह पाठ करने लगा कि उसके हृदय में नये २ भाव उदय होने लगे जिनसे वह मतवाला होकर आपही श्रीमद्भागवत का पाठ करता और रो २ कर व्याकुल होतो रहता था। राजा के घर फिर कभी नहीं गया। बहुत दिन पीछे राजा ने सोचा कि वह ब्राह्मण फिर नहीं आया? तब राजा आप उसके घर गया और क्या देखा कि ब्राह्मण अश्रुपूर्ण लोचन श्रीमद्भागवत पढ़ रहा है। राजाने उसको देखकर कहा "महाराज! अब आपका श्रीमद्भागवत का पढ़ना ठीक है।

(५३१) तीन चार अन्धे हाथी देखने गये, उनमें से एकने हाथो का पांव टटोला और कहा—हाथी स्तम्भेके समान

होता है, दूसरे ने हाथ से सूंड़ देखा और आकर कहा—हाथी मूसर (धनकुटा) के तुल्य होता है, तीसरे ने उसके पेट पर हाथ फेर कर कहा कि हाथी बिटौरा के समान होता है, चौथे ने कान टटोल के देखा और कहा कि हाथी सूप सा होता है, इस के पीछे हाथी के रूपके विषयमें उनमें झगड़ा हुआ इस झगड़े को देख एक मनुष्य ने उनसे कहा कि—तुम क्या बक रहे हो, वे बोले आप पञ्च हो कर हमारा झगड़ा मिटादें उसने कहा अच्छा । निदान उसने सब की बात सुन सुनकर कहा तुम में से एकने भी ठीक रीति से हाथी को नहीं पहि-चाना, न हाथी खम्भेके सदृश है न मूसर सा होता है न बिटौराके ढङ्गका होता है, न सूप के तुल्य है, हाथी का पाँव खम्भे की नाईं कान उसके सूपके समान और सूंड़ मूसर के तुल्य होता है, और पीठ बिटौरा की नाईं होती है, ऐसेही ईश्वर का ज्ञान जिनको एकदेशी है, वे आपस में वादाबिवाद करते हैं ।

(५३२) एक वार महाराज वर्द्दमान की सभा में इस बात पर बड़ा बिचार हुआ था कि शिव बड़े हैं कि विष्णु पण्डितों में से किसीने कहा हर बड़े हैं और किसीने कहा हरि बड़े हैं। दोनों में बड़ा झगड़ा हुआ। अन्तमें एक बुद्धिमान पण्डित बोला "महाराज ! न मेरा शिव से साक्षातकार हुआ और न विष्णुसे फिर कौन बड़ा और कौन छोटा कैसे कहा जाय ।

(५३३) किसी स्थान में एक शैव (शिवजी का भक्त) रहता था। उसकी भक्तिसे भगवान् शिवने उसको अपना दिव्य दर्शन देकर कहा, देख बेटे ! मेरी भक्ति से तूने मेरा

दर्शन पाया परन्तु जबतक कमलापति हरि से तेरा द्वेष (बैर) भाव दूर न होगा, तब तक मैं तेरे ऊपर प्रसन्न नहीं होऊँगा। शैवने यह बात सुन कर शिर झुका लिया। भगवान् शिव भी वहांसे चल दिये। शैव फिर साधन करने लगा। उसके साधना से शिव ने व्याकुल हो फिर उसे दर्शन दिया। किन्तु इस वार भगवान् शिव आधे हर और आधे हरि अर्थात् हरिशंकर रूप से प्रगट हुए। शैव आधी हर मूर्त्ति से आधा प्रशन्न आधी हरि मूर्त्ति से आधा अप्रसन्न हुआ। इसके अनन्तर वह प्रकटभूत अपने इष्टदेवकी पूजा करने लगा। पांय धोने में केवल शिवांश का पांव धोया हरि अंश पैर को छूने की तौ क्या देखा तक नहीं। भगवान् शूलपाणि ने कहा—"देख तेरी मनोकामना पूर्ण तौ होगी परन्तु बिष्णु के द्वेष से बहुत क्लेश उठाना पड़ेगा। मैंने कृपा करके तुझे हरिहर मूर्त्ति दिखलाई। हरमें और हरि में भेद नहीं है। इस बात को तुझे समझाने के लिये मैंने यत्न किया, पर तू न समझ सका"। शिवकी यह बात सुन वह शैव एक गांव में रहने लगा। धीरे २ गांव के लोग उसको पहचान गये कि यह हरि का नाम सुनके चिढ़ता है। तब उसको देखतेही गांव के लड़कों ने "हरि २" कह कर ताली बजाना शुरू किया। शैव ने उपाय हीन होकर अपने दोनों कानों में दो घन्टे लटका दिये ज्यों ही लड़के हरि २ कहकर चिल्लाते त्योंही वह अपने कानों के घण्टे बजाने लगता जिससे उसको हरि नाम न सुनाई दे। तब शैव का नाम घण्टाकर्ण प्रसिद्ध हुआ। अपने इष्टदेवकी मूर्त्ति पर विशेष श्रद्धा और अनुराग रखना उचित है। और दूसरी मूर्त्तियों को भी अपने इष्टदेवकी अभेद भावना से भजन पूजन करना योग्य है। जहां तक हो द्वेष भावको छोड़ देना चाहिये।

(५३४) कलकत्ते के बहुत से पन्थ हैं। एक मनुष्य कलकत्ते जाने का मार्ग नहीं जानता था। उसने दूसरे से पूछा वह इशारा करके बोला उस पंथसे जाओ। थोड़ी दूर चलकर उसने तोसरे से पूछा और उसने दूसरा रस्ता बताया। इसी प्रकार पूछने से बहुत पन्थ उसे ज्ञात हो गये जिसमें से एकमें वह थोड़ा दूर चलकर फिर लौट कर दूसरे मार्ग से चलने लगता था। अन्तमें इसका फल यह हुआ कि वह केवल घूमता ही रहा परन्तु कलकत्ता न पहुँचा। यदि कलकत्ता जाना चाहो तो जो मनुष्य पंथ (रास्ता) जानता है उसकी बात पर विश्वास करके चलो। इस दृष्टान्त का दृष्टान्त यह है कि ईश्वर के निकट जाना चाहो तो किसी गुरूके उपदेश पर विश्वास ला कर चलो क्योंकि यदि ऐसा न करोगे तो बीचही में भटक मरोगे।

(५३५) स्वप्न और जाग्रत अवस्था के विषयमें चर्चा करते २ परमहंसदेवजीने एक कहानी कही कि एक मनुष्य था जो किसी की नौकरी चाकरी नहीं करता था इसी लिये उसकी स्त्री उससे भला बुरा कहा करती थी। एक दिन (प्रारब्धसे) उसका लड़का बीमार होकर मर गया। घर के सब लोग हाय हाय कर रोने लगे। उसी समय वह मनुष्य कपड़ा पहिन कर मकानसे बाहिर निकला। मकान के और लोग शोक से मग्न थे। इस कारण उसकी ओर किसीने न देखा। समय बीतने पर लोगों का शोक कुछ घटा और वे उसको ढूढ़ने लगे वह कहीं न मिला तो बहुत व्याकुल हुए। बहुत देर पीछे क्या देखा कि वह अचकन पहिने दफ्तर से आ रहा है। उसकी स्त्रीने देखकर पूछा "तुम कहां गये थे" वह बोला कि "मैं नौकरी की तलाश में गया था"। स्त्री यह सुन कर बोली

"हाय ! तुम कैसे मनुष्य हो, तुम्हारे हृदय में बिलकुल स्नेह नहीं है। लड़के को मरे बहुत दिन भी तो नहीं हुए हैं तुम्हारे दिल में कुछ भी दुःख नहीं हुआ जो तुम आजही नौकरी की तलाश में गए"। वह हँस कर बोला "सुनो ! एक दिन मैंने स्वप्न देखा कि मेरे सात लड़के हुए। मैं उनको लेकर बड़ा प्रसन्न हो रहा हूँ। इतने में मेरी नींद खुल गई तो वहां एक भी लड़का न पाया और मुझे उनके लिये कुछ भी दुःख नहीं हुआ।

(५३६) किसी मनुष्य को दान से पुण्य होता है और किसी को देने से पाप होता है। तथाहि (जैसे) एक कसाई एक गाय को बध करने के निमित्त लिये जाता था। और गाय भागने की चेष्टा करती थी, इस लिये कसाईको उसे ले जाने में बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। पन्थ में एक अतिथि शाला थी। गाय को एक पेड़से बांध कर कसाईने अतिथि शालामें भोजन किया, तब उसके शरीर में बल आया। तो वह गाय को खींच ले गया। अन्तमें उस गायके बध का चार आने भर पाप कसाई को और बारह आने भर पाप अतिथि शाला के स्वामी को मिला क्योंकि खाना न मिलता तो कसाई उस दिन गाय को नहीं ले जा सकता था।

(५३७) वाटमें चलते २ रात हो जानेसे एक मछली वाली किसी मालीके घरमें ठहरी, मालीने यथा शक्ति उसकी सेवाकी पर उसे नींद न आई, अन्तमें मालीने विचारा कि वाटिकाको फूलोंकी सुगन्धसे नींद नहीं आती तब तत्काल उसने मछलीकी थालीमें पानी करके मछली वालीकी नाकके आगे रख दिया तब मछली वालीको नींद आगई, विषयी

जीवभी मछली वालीके समान हैं संसारकी घिनावनी वस्तु विना उन्हें किसी और वस्तुसे चैन नहीं मिलता ।

(५३८) (स्त्री पुरुष) वैराग्य लेकर तीर्थोंमें घूम रहे थे । चलते २ पतिने देखा कि मार्गमें हीरे पड़े हैं । उनको देख उसने सोचा कि इनको मिट्टीसे दाब देना चाहिये । नहीं तौ यदि मेरी स्त्री देखेगी तौ उसे लालच होगा । यह बात सोच कर वह हीरों पर मिट्टी डाल रहा था कि उसी समय उसकी स्त्री भी आ पहुँची और पतिकी करतूति देख पास आकर पूछा कि तुम क्या कर रहे हो" । पति चुप हो गया । स्त्रीने पैरसे मिट्टीको हटाकर हीरे देखकर बोली कि अभी हीरा और मिट्टीका भेद तुह्मारा बनाही है । तौ तुम क्यों बनमें आए हो ।

(५३९) आप स्त्री लेके गृहस्थ क्यों नहीं बनते । इस प्रश्न के उत्तरमें स्वामीने कहा एक दिन भगवान् स्कन्दने एक बिल्लीको मुंहसे खरोंच दिया । दूसरे दिन उनने माताके गलेमें एक मुंहका चिन्ह देखके पूछा "माता आपके गलेमें मुंहका खरोंच कैसा लगा है" । जगन्माताने कहा बेटे तुमने खरोंचा है । तब कार्तिकेयने पूछा हमारा मुंह तुह्मारे गलेमें कैसे लगा ? माता बोली "बच्चा कल तुमने एक बिल्लीको मुंहसे खरोंचा था, क्या तुम भूल गये ? तब स्कन्दने फिर पूछा बिल्ली का खरोंचा आपके गलेमें कैसे आगया ? माता बोली "बेटा ! इस संसारमें हमसे एक भी जीव अलग नहीं, तुम चाहे किसीको मारो चोट हमरे लगेगी । कार्त्तिकेयको आश्चर्य हुआ और उन्होंने प्रतिज्ञाकी इस जीवनमें विवाह कभी न करूंगा । क्यों कि जिससे हम ब्याहेंगे, वह हमारी माता होगी, निदान सब

पदार्थों में मातृभाव होजानेसे उनका विवाह नहीं हुआ। ऐसेही हमारीभी स्थिति है। और हम भी सब स्त्रियोंको माता समान देखते हैं।

(५४०) जिसे मछली पकड़नेकी आदत है, वह यदि सुने कि किसी तलावमें बड़ी २ मछलीयां हैं तो उस तलावके मच्छी पकड़ने वालोंके पास जाकर पूछा कि क्या इस तालाबमें सचमुच बड़ी २ मछली हैं; और यदि हैं, तो किस चारेसे फंसती हैं। ऐसे सव भेद ले कर वह बंसी फेंक के धीरे २ जांच करेगा जब मछलीके चारा पकड़नेसे चिप्पी को हिलती देखेगा तो मछलीको पकड़ सकेगा इसी प्रकार धर्म्मराज्यमें भी मुमुक्षको महापुरुषोंकी बात पर विश्वास लाकर, भक्ति रूप चारा डाल मन रूप वंसी, और प्राण रूप कांटा लगा कर धीरज धरके बैठना चाहिये।

(५४१) कोई राजा ब्रह्महत्याके प्रायश्चित्तके पूछनेके लिये किसी ऋषिके पास गया। ऋषि उस समय न्हाने गये थे। उनके लड़केने कहा "रामनाम तीन बार उच्चारण करो। ब्रह्महत्या मिट जायगी"। ऋषिने आ कर जब यह बात सुनी तो बोले ऐ चाण्डालो। एक बार राम नाम लेनेसे करोड़ों जन्मके पाप दूर हो जाते हैं। फिर तूने तीन बार राम नाम उच्चारण क्यों बतलाया। जा तू चाण्डाल हो जा। उसी सापसे वह लड़का गुहचाण्डाल हुआ। ऐसी कथा प्रसिद्ध है।

(५४२) प्रश्न—विषय लिप्तता कैसी होती है! उत्तर—विषयी पुरुष घट धरे नेडल (न्यौरा) की नाई होते हैं। जो लोग न्यौरा पालते हैं। वह भीतिमें एक घड़ा टांग देते हैं, और न्यौराके गलेमें रस्सी डालकर उसके दूसरे सिरमें ईट बांधकर

घड़ेमें लटका देते हैं । न्यौरा घड़ेसे बाहर निकलकर इधर उधर घूमता है, किन्तु यदि उसे कोई डांटै या कुछ खटका हो तो वह दौड़ कर घड़ेमें जा घुसता है, पर बहुत देर वहां नहीं ठहर सकता है । गले की रस्सीसे जो ईंट बंधी होती है उसके सहारे वह फिर नीचे उतर आता है । विषयलिप्त पुरुष भी ऐसेही होते हैं । दुःख में पड़कर वे ऊँचे अर्थात् ईश्वरकी ओर उचकते हैं, वहां बहुत देर न रह सकनेके कारण संसारिक विषय रूपी ईंट के सहारे फिर उतर आते हैं; और विषयमें लिप्त हो जाते हैं ।

(५४३) बछड़ा "हम्वा" रव नहीं करता किन्तु "हम" २ करता है। सो इसी का परिणाम यह होता है कि मर जाने पर उसके चाम का ढोल और नाड़ीसे तांत बनती है जिससे रूई धुनी जाती है। धुनते समय तांत "तूँ ही २" करती है अर्थात् जब अहंकार था तब "हम" २ करता था पर जब अहंकार नाश हो गया तब "तूही २" करता है ।

(५४४) किसी युवाने परमहंसदेवजीके पास आकर पूछा "महाशय ! धर्म्म की चर्चा चारों ओर सुनने में आती है परन्तु यथार्थ में धर्म्म क्या है? यह आप मुझे बतला दीजिये"। परमहंसदेवजीने कहा—कि एक पोखरा है। उस के चार घाट हैं । एक मनुष्य एक घाट से पानी पीकर कहता है "यह वाटर (water) है, दूसरा दूसरे घाट से जल लेकर कहता है कि यह एकुआ (aqua) है। इसी प्रकार तीसरा और चौथा मनुष्य तीसरे और चौथे घाट से पानी ला कर कहता है यह पानी है, यह आब है। बस यही धर्म्मका स्वरूप पहचानने का उत्तम दृष्टान्त है। स्वामी की यह बात सुन कर उसने चाहा कि फिर

प्रश्न करूँ परन्तु परमहंसदेवजी ने कहा "जाओ जाओ" बोध होता है तुम्हारा तर्क वितर्क करने का विचार है" । तब वह युवा चुपचाप वहांसे चल दिया ।

(५४५) शङ्कराचार्यजी का एक षण्डामार्क नामक शिष्य था। जब शङ्कर स्वामी कहते थे "शिवोहम्" तौ वह भी कहता था "शिवोहम्"। अर्थात् शङ्करस्वामी जो करते थे वह भी वही करता था। उसका यह बड़ा गुण था कि पूरा गुरुभक्त था। इस लिये बड़े यत्नसे गुरू की सेवा पूजा करता था । गुरूके भोजन के पीछे जूंठी पत्तल में प्रसाद पाता था। इस शिष्यमें दोष यह था कि वह अपने आपको शङ्करस्वामी की नाईं मुक्त पुरुष समझता था। शङ्करस्वामी एक दिन ज्ञान देने के लिये उसको साथ लेकर लुहार की दुकान पर पहुँचे और जलते हुए लोहे का लाल छड़ उसके देखते ही देखते चबा गये और उससे बोले "ले मेरा प्रसाद खा"। शिष्य चकित होगया कि तप्त लोहे का छड़ कैसै खा सकता हूं? फलतः वह उस काम को न कर सका। निदान उसी दिन से उसकी बुद्धि शुद्ध हो गई कि मुखसे शिवोहम् कहना सहज है पर शिव होना कठिन है।

(५४६) जैसे समुद्रके वायुसे पेड़ इत्यादि सभी वस्तु गलने लगते हैं वैसेही ब्रह्मसागरके वायुसे मनुष्य गलाउ पकड़ जाते हैं। अहन्ता और ममता की गांठ खुल जाती है। उसी वायुसे सनक सनन्दन और सनत् कुमार द्रव हो गये। नारद जी दूरहीसे ब्रह्मसागर देखके अपने रूप तक को भूल गये और भगवन् कीर्तनमें उन्मत्त पृथ्वीपर घूमने लगे। शुकदेवजी तट पर पहुँच कर हाथ से तीनि वार ब्रह्मसागरका आचमन करते ही ब्रह्मभावमें लीन हो गये और जड़ोन्माद पिशाचवत

इधर उधर चक्कर खाने लगे। जगद्गुरु शङ्करजी ब्रह्मसागरका तीन चुल्लू पानी पीके मुर्देके समान पड़े हैं। उस समुद्रकी थाह कौन लगा सकता है।

(५४७) सतयुग और त्रेतामें जो योग और तपस्याकी बातें लिखी हैं, उनके विषयमें परमहंसजी दृष्टान्त देके कहा करते थे कि बादशाही समयका सिक्का अब नहीं चलता क्योंकि अब वह शक्ति मनुष्यमें नहीं है। इस समयके अवतारके मतसे चलना चाहिये।

(५४८) किसीके भीतर क्या है सो कौन जान सकता है? मनुष्य ऊपर से जिसको बुरा, जड़बुद्धि और पागल जानते हैं उसके भीतर सम्भव है कि साधु आत्मा निवास करता हो। समाजसे सम्मान मिलना यथार्थ साधुता का लक्षण नहीं कहा जा सकता।

(५४९) एक स्त्री ने जन्मही से बड़े साधुभावसे अपना जीवन बिताया परन्तु मरते समय जब लोग उसको गङ्गाजीमें जलदाह करने को ले गये तब गङ्गाजी की लहरों की कईवार उसकी कमर पर चोट लगी जिससे उसके चित्तमें कुछ कुभाव सा बोध हुआ बस उतने ही दोषसे दूसरे जन्ममें वेश्या का शरीर धरना पड़ा।

(५५०) यदुनाथ मलिक का मकान कहां है? उनका बागीचा कैसा है? कितने रुपये की उनकी सम्पत्ति है? बहुतेरे लोग यों पता लगाया करते हैं। परन्तु ऐसे कितने हैं जो यदुनाथ मलिक को देखने आते हैं और कितने ऐसे हैं जो श्रम उठाकर उनके पास आकर बातचीत करते हैं। ऐसेही शास्त्र विचार धर्म्म चर्चा बहुतसे किया करते हैं परन्तु कितने पुरुष

ऐसे हैं जो ईश्वर का दर्शन चाहते हैं और यत्न करके उनके निकट आते हैं।

(५५१) धान के बड़े २ ढेरों में लाई भरकर चूहादानी रख देते हैं। लाई की गंध सूँघकर चूहे चावल को छोड़ उसे खाने को दौड़ते हैं और अन्तमें चूहादानीमें फंसकर मारे जाते हैं। जीव की भी यही दशा है कि ब्रह्मानन्दरूप सुख को छोड़ कर विषयमें जहां बहुत थोड़ा सुख बोध होता है फँस जाते हैं और माया में मारे जाते हैं।

(५५२) एक मनुष्य ने घर छोड़ १४ वर्ष एकान्तमें साधन करके कुछ सिद्धि प्राप्त की। तब उसने घर लौट कर अपने बड़े भाई से कहा। ऐ भाई! मैंने सिद्धाई पाई है। भाई ने पूछा, कौनसी सिद्धाई तुमने पाई है? उसने कहा "मैं पैदल खड़ा होकर गङ्गापार कर सकता हूँ। बड़े भाई ने उलहना दे कर कहा कि १४ वर्ष तपस्या करनेके पीछे तुमने केवल यही सिद्धि पाई जिसको मनुष्य एक धेले में प्राप्त कर सकता है। तुमने १४ वर्ष जो तपस्या में विताये उसके स्थान में थोड़े समय में धेला कमाने का कोई व्यापार क्यों नहीं सीखा, गङ्गा पार हो जाते।

(५५३) किसी समय हृदयनाथ मुखोपाध्याय ने परम-हंसदेवसे कहा "मामा" सच्चिदानन्दमयी माता का दर्शन आप को होता है। सो उस से कोई सिद्धि मांग लो। रामकृष्ण को हृदय बाबू ने जैसा समझाया वे वैसाही समझ गये और माता के निकट जाकर सिद्धाई मांगी और मांगते २ उन्हें समाधि लग गई तब उन्होंने देखा कि एक मनुष्य विष्ठा दिखलाकर कह रहा है "इसका नाम सिद्धाई है; लेना हो तो लो"?

परमहंसदेव यह अचम्भा देख कर बोले "नहीं मां नहीं" मैं आठ प्रकार की सिद्धियों में से एक को भी नहीं मांगता ।

(५५४) पतिंग का स्वभाव है कि उँजियाला देखते ही उसमें गिरना चाहता है चाहे उसमें गिरकर मारा जाय । उजियाले को कोई आवश्यकता नहीं कि पतिंग मुझमें गिरे इसी प्रकार सच्चे भक्त ईश्वरमें गिरते हैं चाहे कुछ ही क्यों न हो परन्तु ईश्वर को कोई आवश्यकता नहीं । जो उनके पास आता है वे उसे ही आत्मरूप कर लेते हैं ।

(५५५) एक समय कोई मनुष्य जहाज पर चला जाता था । बीचमें जहाज टूट गया । तब वह तैर कर लङ्कामें पहुँचा राक्षस उसे पकड़ कर विभीषण के पास ले गये विभीषण ने आरति उतार कर उसकी इस लिये पूजा की कि रामचन्द्रजी ने मनुष्यरूप में अवतार लिया था ।

(५५६) सिवार (काई) के हटादेने से वह फिर भी जल को छिपा लेती है ऐसेही मायाको हठादेने पर भी वह फिर ढांक लेती है । सिवारको हठाके यदि चारों ओर बांसका बेड़ा बांध दिया जाय तो फिर वह नहीं फैलती, ऐसेही माया को हटाके ज्ञान और भक्तिका घेरा बनाया जाय तो फिर माया नहीं घेरती किन्तु ईश्वरका प्रकाश रहता है ।

(५५७) परमहंसदेवने कहा कलियुगमें हठयोग से सिद्धि होना कठिन है, एक मनुष्य ने उनसे पूछा क्यों ? हठयोग भी तो ईश्वरकी प्राप्ति का एक उपाय है इसके उत्तर में स्वामी ने कहा अन्तमें हठयोगी के तनके ऊपर मन आ जाता है । जैसा कर्त्ताभजा सम्प्रदाय के मतके अनुसार भजन करने वालों का मन पीछे रमण करनेमें लग जाता है ।

(५५८) जैसे रामलीला के स्वांग में कोई मनुष्य (मारीच) माया का मृग बनके आता है पर वह सचमुच मनुष्य होता है, वैसेही यद्यपि सब लोग मनुष्यका चोला पहिने हुए हैं पर वास्तव में उनमें से किसी का बाघ का सा, किसी का रीछ का सा और किसी का सर्प का सा स्वभाव होता है ।

(५५९) परमहंसजीने भक्तमाल ग्रन्थ के विषय में कहा है कि जो कोई भक्तमाल पढ़े वह कट्टरपना और एकदेशिता त्याग करके पढ़े विसमताहीन उदारबुद्धि परमहंसजीने सब मतों का ईश्वरके पास पहुँचने का मार्ग माना था उनके सामने जो कोई किसी मत का निन्दा करके अपनी मतिको पुष्ट करता उसपर परमहंसजी अप्रसन्न होते थे ।

(५६०) प्रश्न—साधना को गति कैसी होती है ?

उत्तर—साधना की चाल तीन प्रकार की होती है । एक चींटी की चाल, दूसरी बन्दर की चाल, तिसरी पक्षी की चाल । पक्षी की चाल जैसे पक्षीने वृक्षके पके फलमें चोंच मारो और फल गिरा और पक्षी उड़ गया, उसे फल नहीं मिला । बन्दरकी चाल जैसे बन्दरने मुँहमें फल लेके ज्योंहीं छलांग मारा कि फल गिर गया । चींटी की चाल जैसे चींटी धीरे २ अपने भोजन के पास गई । और धीरे २ उसे खाने लगी । साधन भी चींटी के समान करना उत्तम है ।

(५६१) एक ज्ञानी और एक भक्त दोनों साथ २ बन में गये । उन्हें एक सिंह दिखाई दिया, ज्ञानी बोला—हमें भागना न चाहिये, सर्वशक्तिमान परमेश्वर हमें बचावेगा, भक्त बोला—नहीं भाई । चलो भाग चलें, जो काम हम आप कर सकते हैं उसमें ईश्वर को वृथा श्रम क्यों दे ।

(५६२) छोटे २ बालक घरमें अकेले मनमाने खिलौनों मे खेलते हैं वहां उन्हें डर नहीं लगता पर ज्योंही माता आती है त्योंही खिलौना फेंक के अम्मा करके उसके पास दौड़ जाते हैं, तुम लोग भी ऐसेही धन, मान, कीर्ति की पुतली से संसार में सुख भोगते हो कोई डर नहीं पाते पर यदि एक एक बार भी आनन्दमयी माता का दर्शन पालो तो तुम्हें धन, मान, और कीर्ति अच्छी न लगेगी, सब छोड़ तुम माता के पास दौड़ जाओगे ।

(५६३) श्रीरंग देश में एक ब्राह्मण रहता था । वह कुपढ़ था पर हर दिन गीता के अठारहो अध्याय का पाठ करता था और निरन्तर आनन्द के आंसू बहाया करता था। गीता के पदों का ठीक उच्चारण भी वह नहीं कर सकता था तब गीता का अर्थ कैसे समझ सके। सब लोग उसकी हंसी उड़ाते थे परन्तु वह एक भी नहीं सुनता था । आपना पाठ प्रतिदिन करके आनन्द के आंसू बहाता था। एक दिन श्री गौराङ्ग चैतन्यदेवजी ने उसके निकट आकर पूछा बेटा गीता की कौन सी बात पर तुम्हारे इतने आंसू बहते हैं ? उसने कहा " गुरू की आज्ञा से मैं नित्य गीता पाठ करता हूँ और जब तक पाठ करता हूं तब तक ध्यानसे देखता हूं कि श्री कृष्णजी अर्ज्जुनके रथ पर बैठकर उसको उपदेश दे रहे हैं। श्री गौराङ्गदेवजीने उसको हृदयसे लगाकर कहा 'तुह्मीने गीताका सार पाया है ।

(५६४) केशव बाबू एक दिन परमहंसजीको कमल-कुटीर (अपने घर) में ले जाके धर्म चर्चा करनेके पीछे उनसे बोले "क्या आपको कनक पर पूरी स्वतंत्रता है ? परमहंसजी

यह सुन कर लड़कोंके समान सूधेपनसे बोले "नहीं महाशय ! मैं यह नहीं कह सकता"। उन्होंने यह बात ऐसे भावसे कही कि केशव बाबू की नस २ में घुस गई। और केशव बाबूने बड़ी प्रशंसा करके और लोगोंसे यह बात कही कि परमहंसजी की कैसी विलक्षण रुचि है कि धातुके छूनेसे जिसका हाथ अपने आप टेढ़ा पड़ जाता है अहो ! वह भी कहता है कि सोने पर मेरा स्वातन्त्र्य नहीं है ॥

(५६५) कृष्णलीलाके नाटकमें तुमने देखा होगा कि जब तक लोग गोलमाल (गड़बड़) मचाये रहते हैं कि कान्हा आओ ! यों चिल्ला २ के गाते हैं तब कृष्ण उनकी ओर हेरते भी नहीं, नेपथ्यमें उपशमसे हुक्का पीते और वार्त्तालाप करते रहते हैं; अन्तमें जब सब आडम्बर दूर हो जाता है और नारद मुनि प्रेम भरे मीठे स्वरसे गान आरम्भ करते हैं। तब श्री कृष्ण नहीं ठहर सकते और तुरन्त रङ्गभूमिमें आजाते हैं; साधकके चित्तकी वृत्तिकी लीलाका भी यही भाव पाया जाता है कि जब तक साधक "प्रभू आओ" यों किया करते हैं तब तक प्रभू उसकी ओर देखते भी नहीं। वह तब आते हैं जब साधक भक्तिभावसे गद्गद वचन कहता है।

(५६६) किसी समय नारदजी को अभिमान हुआ कि मेरे समान दूसरा कोई भक्त नहीं। भगवान् ने उनको अभिमान जानकर कहा—हे नारद। अमुक स्थानमें मेरा एक भक्त रहता है। तुम उससे मिलि आओ। नारद जी वहां गये और देखा कि एक किसान सबेरे उठकर एकवार हरि नाम कह कर खेतमें हल जोतने गया और सारे दिन काम किया रातको घर आके फिर एक वार हरिनाम ले कर सो रहा। नारदजी

ने कहा वाह। इसको भगवान्‌जी कैसे भक्त कहते हैं ? भक्तके लक्षण तौ इसमें कुछभी नहीं देखता हूँ। तब नारदजीने भगवान्‌जीके पास जाकर अपना अनुभव कह सुनाया। भगवान् जीने कहा– 'नारद ! तुम यह तेल को कटोरी हाथ में लेकर स्वर्गमें घूमि आओ, परन्तु देखो एक बूंद भो तेल की न गिरने पावै" भगवान् की आज्ञा पाकर नारदजी तेल से भरी कटोरी ले कर स्वर्ग में घूम आए। तब भगवान् जी ने कहा कि नारद! स्वर्ग घूमते समय मेरा नाम कितने वार लिया"। नारदजीने कहा "भगवान्, मैं आपका नाम एकवार भी न ले सका। स्मरण कैसे करूं ! आपने तो कटोरी को तेल से किनारे तक भर दिया था पांव उठाते ही तेल छलकने लगता था इस डर से मेरी दृष्टि तेल की ओर ही रही आपके स्मरण में मेरा ध्यान कैसे जा सकता था। भगवान् ने कहा "नारद ! एक कटोरी तेल के डरसे तुमसा भक्त मुझे भूल गया। विचारा वह तौ किसान है और भक्त है जो इतने बड़े संसार के भार को सँभालता हुआ दिन रातमें दो वार तो भी मेरा नाम लेताहै।

(५६७) एक नाईने मार्गमें चलते २ अचानक सुना कि "कोई कहता है सात घड़े रुपया लोगे ? नाईने चकित हो के चारों ओर देखा पर कोई न दीख पड़ा। पर सात घड़े रुपये के लालच से चिल्ला चिल्ला के बोला कि हम रुपये लेगें। तब उसके कान में यह भनक पड़ी कि " मैं तेरे मकान पर रुपया रख आया हूँ। तू जाके लेले। सुनतेही नाई तुरन्त अपने घर गया और देखा कि वास्तव में उसके घर मे सात घड़े रक्खे हैं। पर उनमें से छः घड़े भ[illegible] हैं और एक घड़ा खाली है। तब उस खाली घड़े को भी उस[illegible] भरना चाहा। अतः उसने घर

का सब सोना चांदी उस घड़ेमें भरा पर उससे घड़ा नहीं भरा नाई जो कुछ नित्य कमाता था वह भी उसी घड़े में डालता था। अन्त में गिड़गिड़ाके राजा से बोला कि महाराज मुझे संसार में बड़ा दुःख है क्योंकि आपके वेतन (तनखाह) से मेरा पूरा नहीं पड़ता। यह सुन राजाने उसका महीना बढ़ा दिया। परन्तु तौ भी नाई की वही दशा रही। तब वह नाई घर २ भीख मांग कर खाने और रुपयेसे घड़ा भरने लगा। राजाने एक दिन उसकी यह दुर्दशा देखके कहा "क्योंरे नाई पहिले तो थोड़ेही धनमें भली भांति तेरा निर्वाह होता था पर अब दूने में भी नहीं होता मैने सुना है कि तू सात घड़ा रुपये लाया है ? नाई घबड़ा के बोला "आपसे यह बात किसने कही राजाने कहा "अरे ! वह धन यक्षका है। पहिले वह मेरे पास आके कहा करता था कि सात घड़े धन लोगे ? हमने पूछा कि खर्च करने को दोगे अथवा रखने को ?" यह सुन यक्ष चुपचाप चला गया ऐसा रुपया क्यों लेना चाहिये ? वह खर्च तो होही नहीं सकता ? क्या इकट्ठा रखना है। यदि तू अपना भला चाहता है तो उस रुपये को फेर दे। नाई यह सुनतेही झटपट रुपये के पास गया और बोला "अपना रुपया ले जाओ हमें नहीं चाहिये" यह सुन यक्ष बोला, "अच्छा। और नाई घरमें जाके देखा तो एक भी घड़ा न रहा। लाभ के बदले यह हानि हुई कि जो कुछ उसने सात घड़े में अपना धन रक्खा वह भी चला गया। धर्मधन भी इसी प्रकार का है। ज्ञान न रहने से अन्तमें सब का सब नाश हो जाता है।

(५६८) एक सन्यासी से कोई ब्राह्मण मिला, संसार तथा धर्म के विषयमें बहुतसी वार्त्ता होने पर सन्यासी ब्राह्मण

से बोला—देखो " कोई किसी का नहीं है "। ब्राह्मण ने उस की यह बात न मानी, उत्तर देके कहा—जो मनुष्य माता, पिता और पत्नी के लिये दिनरात भ्रमा करता है, वह कैसे समझ सकता है कि उसका कोई नहीं है, हे गोसांई हमारा माथा दुखने पर जो माता घबड़ाती है, और हमारे क्लेश के निवारण और सुख के लिये वह अपना प्राण न्यौछावर कर देती है वह क्या मेरी कोई नहीं है; सन्यासी ने कहा—यदि इस दृष्टि से देखो तो भी तुम्हारी न होगी परन्तु यथार्थ में तुम भूलते हो, यह मत कहो कि तुम्हारी माता, पिता, पत्नी, वा पुत्र तुम्हारी सहाय करेगें, मेरी बात सत्य है वा मिथ्या इसकी परीक्षा कर देखो, आज घर जाओ और बहाना करके चिल्लाने लगो; हम तुम्हें तब जगत का खेल दिखलावैंगे निदान सन्यासी के कथनानुसार ब्राह्मण घर जाके चिल्लाने लगा, उस समय अनेक वैद्य डाक्टर आये पर उसकी पीड़ा किसी प्रकार न घटी, माता बोली हाय मैं मारी गई और इसी प्रकार उसकी स्त्री तथा पुत्रादि सब रोने लगे, इसी समय वह सन्यासी भी पहुँचा और बोला कि सचमुच इसकी बीमारी बड़ी कड़ी है, यदि कोई इसके लिये अपना प्राण न्यौछावर करे तो यह अब भी बच सकता है, यह सुन सब के सब चकित होगये, संन्यासी ने बूढ़ी माता को बुलाके कहा कि इस बुढ़ापे में लड़के को खोकर तुम्हारा जीवन मरण से भी गया बीता है, यदि तुम इसके बदले प्राण देदो तो मैं इसके प्राण बचा दूं और तुम भी यदि माता होके प्राण न दोगी तो और कौन देगा। बुढ़िया रोकर बोली बाबाजी ! इसके लिये जो आप कहेंगे सो करूंगी आप जो प्राण के लिये कहते हैं तो ऐसे पुत्र के लिये प्राण क्या चीज़ है पर सोचती हूं कि इसके बच्चों की क्या दशा होगी ?

मेरा कर्म न फूटा होता तो यह मेरे पेट में कैसे आता यदि मेरा प्राण चला जाय तो इन्हें कौन पालेगा यह बात सुनते ही स्त्री रो उठी और बोली—हाय मां ! हाय बाप ! तब सन्यासी स्त्री से बोला इसकी मा इसके लिये प्राण नहीं देती है तौ क्या तू इसके बचाने के लिये अपना प्राण देगी ? स्त्री ने कहा—मेरे भाग्य में जो बदा होगा सो होगा पर आप मर के अपने माता पिता को दुखी करने से क्या लाभ है ? निदान इस प्रकार से सभों ने अपना २ बहाना किया । तब सन्यासी ने रोगी से कहा-देखते हो तुम्हारे लिये कोई प्राण नहीं देता है अब जाना कि " कोई किसी का नहीं है । तब तो उसी समय ब्राह्मण गृहस्थ को छोड़कर सन्यासी के साथ हो लिया ॥ इति ॥

ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः हरि ओं ॥

